ISSN 2277 - 7865
Price : 50.00

तित्थयर

वर्ष : ३७ अंक : ०१ अप्रैल २०१३

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं,
जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है।
जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास
कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

Nivesh Invest Pte. Ltd.
Mumbai-Singapore-Honkong-Shanghai

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३७ अंक - १ अप्रैल २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

॥ जैन भवन ॥

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. *Dr. Sagarmal Jain*
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. *Dr. Peter Flugel*
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10 Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
	विशेषांक	
चौबीस तीर्थंकर पुरासाक्ष्यों एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में		११

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : मंगोलिया से प्राप्त देवी सरस्वती का चित्र

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली।।1।।

इस लोक में स्थित सम्पूर्ण वस्तुओं के तत्त्वज्ञान का यथार्थरूप बताकर तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले, धर्म रूपी तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग, द्वेष आदि कषायों को जीतने वाले, तीनों लोकों में पूज्य ऐसे चौबीस केवलज्ञानी तीर्थंकरों की मैं वन्दना करती हूँ। ये चौबीस तीर्थंकर हैं–

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।2।।
सुविहं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि।।3।।
कुंथुं अर च मल्लिं. वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च।।4।।

तीर्थंकर परम्परा के आज भी इतने प्रमाण मिलते हैं कि हम निःसंदेह कह सकते हैं कि यही आदि परम्परा, मानव सभ्यता और संस्कृति का मूल स्त्रोत रही थी। कालान्तर में इसी से निकलकर लोगों ने अलग-अलग धार्मिक मत चलाये जो विभिन्न धर्म के रूप में प्रचलित हुए। उन सब मतों का आधार ये तीर्थंकर परम्परा ही रही। इस उच्च कोटि की परम्परा को धूमिल करने का प्रयास हजारों वर्षों से चल रहा है। इसी में से पृथक हुए लोगों ने अपनी-अपनी मान्यताएँ स्थापित करने के उद्देश्य से मूल को नष्ट करने की चेष्टा की और आज भी ये चल रही है। अभी हाल ही में भारत के

पालिताना तीर्थ (सौराष्ट्र) में कुछ अराजक जैन विद्वेषी लोगों ने पहाड़ के ऊपर गणेश और शिव की आकृति के पत्थर रख दिये और जैन समाज के दो नवयुवकों को अगवा कर लिया तथा इस शर्त पर उनको छोड़ा कि यहाँ पर उनका मंदिर बनवाना होगा। इसी प्रकार गिरनार तीर्थ में भी धीरे-धीरे ऐसा ही किया जा रहा है। इसके पीछे हजारों वर्षों से चली आ रही मानसिक संकीर्णता और धर्म के नाम पर जेहाद करने वालों का यह कार्य है। यहाँ पर प्रचलित ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्रों को अपनी मान्यतानुसार परिवर्तित कर शूद्र जाति (बाल्मिकी) के बीच प्रचलित करवाकर समाज से नैतिकता को समाप्त करना तथा प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों को परिवर्तित करने का दुष्परिणाम आज समाज में स्पष्ट देखा जा रहा है।

जैन ऐतिहासिक साक्ष्यों को नष्ट करना, मंदिरों एवं मूर्तियों को नष्ट तथा परिवर्तित करना, क्षेत्र पूजा-को लिंग पूजा में बदल देना आदि सैकड़ों उदाहरण हैं जो प्रमाणित करते हैं कि किस तरह एक उच्चकोटि की सांस्कृतिक परम्परा को नष्ट एवं परिवर्तित किया गया और आज भी किया जा रहा है। इस विषय में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का यह वक्तव्य बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें उन्होंने लिखा है कि— "Myths and legends of Gods and heroes current among Austric and Dravidians long attending the period of Aryans advent in India (1500 B.C.) appeared to have been rendered in the Aryan Language in late and garbled or improved version according to themselves to Aryan Gods and heroes worlds and it is these myths and legends to Gods, sagas which we largely find in puranas.

"आस्ट्रिक और द्रविड़ों में आर्यों के यहाँ आगमन के पूर्व (ई. पू. 1500) देवताओं और वीरों की दंतकथाएँ प्रचलित थी। ये कथाएँ आर्य भाषा में बहुत समय बाद आयी जिनमें आर्य देवताओं और मान्यताओं के अनुसार सुधार या परिवर्तन हुआ और वे आर्यों के देवों एवं वीरों के रूप में बदल गए। पुराणों की कथाएं भी इसी प्रकार पैदा हुई।" इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तविकता के मूल्यांकन के लिए निरपेक्ष दृष्टि से ब्राह्मण साहित्य का गवेषणापूर्ण अध्ययन करने की आवश्यकता है।

इतिहासकार रोमिला थापर ने भी इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है— "We are now finding evidence of Shaivite attacks on Jain temples, the destruction of temple, the removal of idols, the reimplanting of shaivite images in their place, this is a regular occurence-------- Even temple were destroyed or Jain monuments were destroyed by Hindus particularly by shaivites.

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे समाज में शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति सोये हुए हैं। अपने कर्तव्यों के प्रति सजग नहीं है, सच का सामना करने की वीरता उनमें नहीं रही है; सिर्फ अपने स्वार्थ के मद में आँखें मूंदे तमाशा देखते हैं और अपनी जय-जयकार सुनने की लालसा रखते हैं। उनसे मेरा यह कहना है कि अब भी अगर नहीं चेते तो हमारी परम्पराएँ सिर्फ धूमिल ही नहीं होगी बल्कि समाप्त हो जाएगी और हम देखते, हाथ मलते और आपस में लड़ते रह जाएंगे।

तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का सही मूल्यांकन हम तभी कर पाएंगे जब उसको सम्यक् रूप से जाने और उस पर चलने के लिए प्रतिबद्ध हो।

तीर्थंकरों के प्रामाणिक इतिहास पर यह शोध लेख देने का प्रमुख कारण यही है कि हम अपने प्राचीन इतिहास से अवगत हो और हमें गर्व होना चाहिए कि हमने एक ऐसी संस्कृति में जन्म लिया जो मानव इतिहास एवं सभ्यता की जननी कही जा सकती है। कैसे थे वे लोग?, कैसा था उनका अथाह आत्मज्ञान?, हम सोच भी नहीं पाते क्योंकि हमारी दृष्टि संकुचित होती जा रही है। मैं– मेरे में ही उलझकर अपने तक ही सीमित बन गए हैं। इस मैं-मेरे को छोड़कर सर्वदर्शी, दूरदर्शी बनना होगा, तभी मानव जाति का उत्थान संभव होगा। समर्पित है यह कृति, यह प्रयास, यह जीवन, उन तीर्थंकरों के प्रति जो हमारे परम आदर्श हैं।

सारा खेल तुम्हारा है,
तुम्हीं हो लेखक, तुम्हीं हो उसके पात्र,
तुम्हीं हो उसके दर्शक,
दूसरे को मत खोजो, अपने को खोज लो,
जो इस खोज में लग जाता है,
वह एक दिन मुक्त हो जाता है।

चौबीस तीर्थंकर

पुरासाक्ष्यों एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व जापान के एक विद्वान सुजुको ओहिरो का एक लेख पढ़ने में आया जिसमें चौबीस तीर्थंकरों के अस्तित्त्व पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया था। उनके कहने का सार यह था कि इन चौबीस तीर्थंकरों में भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर के अलावा कोई वास्तविकता नहीं है। ये आज के प्रचलित हिन्दू धर्म के चौबीस अवतारों तथा बौद्ध धर्म के चौबीस बुद्धों का सरासर अनुकरण है। दुर्भाग्यवश जैन समाज के कुछ प्रतिष्ठित लोग भी इन बीस तीर्थंकरों के अस्तित्व को लेकर असमंजस्स में है। इस विषय पर अध्ययन करके उपलब्ध साहित्यिक, पुरातात्त्विक और प्राचीन परम्पराओं के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जिन्हें मैं आपके समक्ष रख रही हूँ।

तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता की खोज करने से पूर्व तीर्थंकरों के विषय में जानना आवश्यक है। ये तीर्थंकर शब्द कहाँ से आया, इसका अर्थ क्या है? ये इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है? और इसकी विशेषताएँ क्या है? सबसे प्राचीन चली आ रही परम्परा 'समन' है। विश्व के प्राचीन इतिहास का अवलोकन करने से सभी प्राचीन संस्कृतियों में समन परम्परा मिलती है। 'समन' और 'जिन' शब्द का सबसे प्राचीन रूप हमें साइबेरिया, मंगोलिया तथा चीन में मिलता है। यह उत्तरी ऐशिया के 'इवेंक' भाषा का शब्द है। मंगोलियन और चीनी भाषा में 'जिन' का अर्थ है 'शुद्ध'। चीन में

'समन' और जिन शब्द का प्रचलन अधिक मिलता है। चीनी भाषा में 'समन' को 'Wu' कहते है। 'Wu' का सबसे प्रथम वर्णन 1600 ई. पू. में Shang Dynasty के शासन में मिलता है। बाद में यहीं शब्द चीनी बौद्ध ग्रन्थों में श्रमण के रूप में लिखा जाने लगा। यद्यपि कुछ विद्वानों के अनुसार साइबेरियन समन और चीनी Wu में कुछ अन्तर है लेकिन लेखक आर्थर वेली ने लिखा है कि "Indeed the functions of the Chinese Wu were so like those of Siberian and Tungus Shamans that it is Convenient......... to use as a translation of Wu." इस प्रकार यह समन शब्द श्रमण का ही अपभ्रंश है। मिस्र से ईराक, ईरान, टर्की, यूनान, रूस, चीन, मंगोलिया तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के प्राचीन देशों की आदि परम्परा समन ही रही है। इसी परम्परा में जिन, अर्हत, अरिहंत, व्रात्य, निर्ग्रन्थ, श्रमण और तीर्थंकर होते हैं।

1. इस श्रमण परम्परा के प्रतिष्ठापक जितेन्द्रिय होने के कारण जिन कहलाते हैं।
2. समस्त पूज्य गुणों से युक्त होने के कारण अर्हत् नाम से अभिहित,
3. निरन्तर योगपूर्वक सदाचरण के मार्ग पर आरुढ़ होने के कारण वातरशना,
4. व्रतपूर्वक सदाचरण के मार्ग पर आरुढ़ होने के कारण व्रात्य,
5. समस्त अंतरंग और बहिरंग से मुक्त होने से निर्ग्रन्थ,
6. सम्पूर्ण समत्व के साधक और उद्घोषक होने के कारण समन,
7. स्वेच्छा एवं श्रमपूर्वक तप, त्याग, संयम का मार्ग अपनाने के कारण श्रमण,

8. संसार को दुःखरूप जान और मानकर उससे पार होने के लिए धर्मरूपी तीर्थ का प्रारम्भ करने के कारण तीर्थंकर,
9. रागद्वेष रूपी आंतरिक शत्रुओं पर विजय पारने के कारण अरिहंत,
10. सब भव बीजांकुर क्षीण करने के कारण अरहंत,
11. चार घातिय कर्म को क्षय करके केवलज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त करने के कारण वीतराग सर्वज्ञ अर्हत कहलाते है।

तीर्थंकरों में ये सभी गुण होते हैं।

वर्तमान इतिहासकारों ने श्रमणों की कुछ सामान्य विशेषताएँ बतायी है। जो प्राचीन समन धर्म की भी विशेषताएँ है

1) आत्मा का अस्तित्व,
2) मूर्तिपूजा
3) कर्म सिद्धान्त
4) संसार अनन्त और अनादि,
5) दिगम्बरत्व

सब मनुष्य व्रात्य, निर्ग्रन्थ, जिन, और बुद्ध हो सकते हैं लेकिन तीर्थंकरों की एक विशेषता उन्हें इन सबसे अलग करती है। यद्यपि केवलज्ञान सभी को होता है लेकिन तीर्थंकर वे होते हैं जो केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ रूपी तीर्थ की स्थापना करते हैं। जबकि जिन, बुद्ध, निर्ग्रन्थ, व्रात्य आदि केवलज्ञान तो प्राप्त करते हैं लेकिन चतुर्विध संघ रूपी तीर्थ की स्थापना नहीं करते। प्राचीन काल में इस चतुर्विध संघ को ही तीर्थ कहा जाता था और इस तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर कहलाते थे।

केवली और तीर्थंकर दोनों में ज्ञान की समानता रहती है। परन्तु एक अन्तर उन्हें अलग रखता है। तीर्थंकर **स्व** कल्याण के बाद **पर** कल्याण के लिए तत्पर रहते हैं। वे तीनों लोकों के उद्धारक होते हैं। उनका बल, वीर्य जन्म से ही अनन्त होता है। कथा साहित्य में नवजात शिशु महावीर द्वारा चरणंगुष्ठ से सुमेरू पर्वत को कंपित करने का आख्यान प्राप्त होता है। एक प्रमुख विशेषता जो तीर्थंकरों में होती है वह उनका जन्म क्षत्रियकुल में होना। जैन दर्शन में जातिवाद का कोई स्थान नहीं है तब ऐसा क्यों माना गया है कि तीर्थंकरों का जन्म क्षत्रिय कुल में होगा? ब्राह्मण ब्रह्मचर्य-सत्य-संतोष प्रधान भिक्षाजीवी होता है जबकि क्षत्रिय ओजस्वी, तेजस्वी, पराक्रमशाली एवं प्रभावशाली होता है। धर्म-शासन के संचालन और रक्षण में यह क्षत्रिय वृत्तियाँ होना आवश्यक है। ब्राह्मण कुल का व्यक्ति तेजस्वी और त्यागी नहीं होता। इसी लिए ऋषभदेव से महावीर तक सभी तीर्थंकर क्षत्रियकुल में हुए। तीर्थंकर अपनी तप-साधना स्वयं करते हैं किसी देव, दानव या मानव का सहारा नहीं लेते हैं। जब श्रमण भगवान महावीर से देवेन्द्र ने आकर निवेदन किया कि 'भगवन् आप पर भयंकर कष्ट और उपसर्ग आने वाले है अतः मैं आपकी सेवा में रहकर इन कष्टों को दूर करना चाहता हूँ आप ऐसी आज्ञा दें।' उत्तर में प्रभु ने कहा- 'हे शक्र ! स्वयं द्वारा बाँधे हुए कर्मों को स्वयं ही भोगना होता है दूसरे किसी की सहायता लेने से कर्म के फल का भोग का समय आगे पीछे हो जाता है लेकिन कर्म नहीं कटते।' तीर्थंकर स्वयं ही कर्म काटकर अरिहंत पद प्राप्त करते हैं। सब व्यक्ति समान है यानि सबकी आत्मा एक है। आत्मा एक है इस सिद्धान्त को स्वीकारते हुए भी तीर्थंकरों का जन्म क्षत्रिय कुल में माना गया क्योंकि क्षात्र तेज वाला शस्त्रास्त्र सम्पन्न व्यक्ति ही राजवैभव को साहसपूर्वक

त्यागकर अनेक कष्टों और बाधाओं का सामना कर अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन कर सकता है। अपनी कठोर साधना और तपमय जीवनचर्या से तीर्थंकरों ने यह दिखाया कि प्रत्येक व्यक्ति अपने साहस और पुरुषार्थ से अपने कर्मों को क्षय कर सकता है। कर्मों के अशुभ फल को भोगते समय भी घबराकर भागना वीरता नहीं बल्कि धैर्य के साथ उसका सामना करना और अपने शुभ ध्यान से कर्मों को काटना ही वीरत्व है।

तीर्थंकरों के गुणों का वर्णन 'नमोत्थुणं' नामक प्राचीन प्राकृत स्तोत्र में मिलता हैं। इसमें तीर्थंकर को धर्म का प्रारम्भ करने वाला, तीर्थ की स्थापना करने वाला, धर्म का प्रदाता, धर्म का उपदेशक, धर्म का नेता, धर्म मार्ग का सारथी और धर्म चक्रवर्ती कहा गया है। तीर्थंकर का कार्य है स्वयं सत्य का साक्षात्कार करना और लोक मंगल के लिये सत्य मार्ग व सम्यग् मार्ग का प्रवर्तन करना। वे धर्म मार्ग के उपदेष्टा और धर्म मार्ग पर चलने वालों के मार्गदर्शक हैं। उनके जीवन का लक्ष्य होता है स्वयं को संसार चक्र से मुक्त करना, आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करना और दूसरे प्राणियों को भी इस मुक्ति और आध्यात्मिक पूर्णता के लिए प्रेरित करना और उनके साधना में सहयोग प्रदान करना। तीर्थंकरों को संसार समुद्र से पार होने वाला और दूसरों को पार कराने वाला कहा गया है। वे पुरुषोत्तम हैं, उन्हें सिंह के समान शूरवीर, पुण्डरीक, कमल के समान वरेण्य और गन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ माना गया है। वे लोक के उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकर्ता, दीपक के समान लोक को प्रकाशित करने वाले कहे गए हैं।

जैन साहित्य में चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जीवन चरित्र

एवं उनके पूर्व भवों का वर्णन एक आत्मा के परमात्मा बनने का उदाहरण है। मानव भव को दुर्लभ माना गया है, क्योंकि आत्मा की मुक्ति मनुष्य भव में ही होती है। इसीलिए ये चौबीस तीर्थंकर कोई देवता नहीं बल्कि साधारण मानव थे। वे स्वयं के पुरुषार्थ से मानव से महामानव बने, पुरुष से महापुरुष बने। Mr. Neo Rating जो स्वयं को जैन कहलाना पसन्द करते थे उन्होंने अपने लेख 'My decision for Jainism' में लिखा है– I did like to speak about Mahavira of all religious teachers. I feel closest to him. He was a human like my self and nothing more-in the beginning.

आगे उन्होंने लिखा है कि–

> "Instead of God becomes man we see that
> in the person of Mahavira man becomes God."

तीर्थंकर परिचय :-

क्र. सं.	नाम	जन्मस्थान	निर्वाणस्थल	प्रतीक
1.	ऋषभदेव	अयोध्या (स्वाकुभूमि)	अष्टापद (कैलास)	बैल
2.	अजितनाथ	अयोध्या (साकेत)	सम्मेतशिखर	गज
3.	सम्भवनाथ	श्रावस्ती	सम्मेतशिखर	अश्व
4.	अभिनन्दन	अयोध्या (विनीता)	सम्मेतशिखर	वानर
5.	सुमतिनाथ	अयोध्या (कौशल)	सम्मेतशिखर	कुंचु (क्रोन्च,चकवा)
6.	पद्मप्रभु	कौशाम्बी	सम्मेतशिखर	रक्तकमल कमल (कमल)
7.	सुपार्श्वनाथ	वाराणसी (काशी)	सम्मेतशिखर	स्वस्तिक (नन्द्यावर्त)
8.	चन्द्रप्रभु	चन्द्रपुरी	सम्मेतशिखर	चन्द्र (अर्ध चन्द्र)
9.	सुविधिनाथ	काकन्दी	सम्मेतशिखर	मगर

10.	शीतलनाथ	भद्दिलपुर (भद्रपुर)	सम्मेतशिखर	श्रीवस्त्र (स्वस्तिक)
11.	श्रेयांशनाथ	सिंहपुर	सम्मेतशिखर	गेढ़ा
12.	वासुपूज्य	चंपापुरी	चंपापुरी (मन्दारगिरि)	महिष, भैसा
13.	विमलनाथ	कंपिल्यपुर	सम्मेतशिखर	वराह,सुकर
14.	अनन्तनाथ	अयोध्यापुरी	सम्मेतशिखर	श्येन, बाज
15.	धर्मनाथ	रत्नपुर	सम्मेतशिखर	वज्र
16.	शान्तिनाथ	गजपुर, हस्तिनापुर	सम्मेतशिखर	हरिण
17.	कुंथुनाथ	गजपुर, हस्तिनापुर	सम्मेतशिखर	छागल, बकरी
18.	अरनाथ	गजपुर, हस्तिनापुर	सम्मेतशिखर	नन्द्यावर्त,मत्सय
19.	मल्लिनाथ	मिथिला	सम्मेतशिखर	कलश
20.	मुनिसुव्रत	राजगृह (कुशाग्रनगर)	सम्मेतशिखर	कुर्म
21.	नमिनाथ	मिथिला	सम्मेतशिखर	नीलोत्पल (नील कमल)
22.	अरिष्टनेमि	शौरीपुर (द्वारावती)	गिरनार, रैवतक उज्जयन्त गिरि	शंख
23.	पार्श्वनाथ	वाराणसी	सम्मेतशिखर	सर्प
24.	महावीर	कुण्डपुर, कुण्डलपुर	पावापुरी	सिंह

तीर्थंकरों का अन्तरकाल :

1.	ऋषभदेव	तीसरे आरे के निवासी पक्ष अर्थात् 3 वर्ष साढ़े आठ मास शेष समयकाल अवशिष्ट रहते समय मुक्ति पधारे
2.	अजितनाथ	पचास लाख करोड़ सागर
3.	संभवनाथ	तीस लाख करोड़ सागर
4.	अभिनन्दन	दस लाख करोड़ सागर
5.	सुमतिनाथ	नव लाख करोड़ सागर
6.	पद्मप्रभ	नब्बे हजार करोड़ सागर
7.	सुपार्श्वनाथ	नव हजार करोड़ सागर
8.	चन्द्रप्रभ	नव सौ करोड़ सागर
9.	सुविधिनाथ	नब्बे करोड़ सागर
10.	शीतलनाथ	नव करोड़ सागर
11.	श्रेयांसनाथ	छियासठ लाख छब्बीस हजार एक सौ सागर कम एक करोड़ सागर
12.	वासुपूज्य	चौवन सागर

13.	विमलनाथ	तीस सागर
14.	अनन्तनाथ	नव सागर
15.	धर्मनाथ	चार सागर
16.	शान्तिनाथ	पौन पल्योपम कम तीन सागर
17.	कुंथुनाथ	अर्द्ध पल्य
18.	अरनाथ	एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव पल्य
19.	मल्लिनाथ	एक हजार करोड़ वल्ष
20.	मुनिसुव्रत	चौवन लाख वर्ष
21.	नमिनाथ	छः लाख वर्ष
22.	अरिष्टनेमि	पांच लाख वर्ष
23.	पार्श्वनाथ	तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष
24.	महावीर	दो सौ पचास वर्ष बाद महावीर सिद्ध हुए।

लिखित रूप में सबसे प्राचीन साहित्य जो आज माना जाता है वे वेद हैं। वेदों का जो रूप हमें मिलता है वह मौलिक नहीं होकर संकलित वेद हैं। अतः मूल वेद उससे भी प्राचीन रहे होगें। संकलित वेदों में जो उल्लेख मिलते है वे अवश्य ही उन प्राचीन मौलिक वेदों से लिये गये होगें जो श्रुत में चले आ रहे थे। वेदों और पुराणों आदि में ऋषभ परम्परा के उल्लेख प्रचुर रूप से मिलते हैं। ऋग्वेद के गवेषणात्मक अध्ययन के आधार पर प्रसिद्ध विद्वान श्री सागरमल जी ने 'अर्हत् और ऋषभवाची ऋचायें' नामक लेख में लिखा है—

"ऋग्वेद में न केवल सामान्य रूप से श्रमण परम्परा और विशेष रूप से जैन परम्परा से सम्बन्धित अर्हत्, अरिहन्त, व्रात्य, वातरसनामुनि, श्रमण आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है अपितु उसमें अर्हत् परम्परा के उपास्य वृषभ का भी उल्लेख शताधिक बार मिलता है। मुझे ऋग्वेद में वृषभवाची 112 ऋचाएँ प्राप्त हुए है। सम्भवतः कुछ और ऋचाएँ भी मिल सकती है।" डॉ. राधाकृष्णन, प्रो. जिम्मर, प्रो. वार्डियर आदि कुछ जैनेतर विद्वान इस मत के

प्रतिवादक है कि ऋग्वेद में जैनों के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से संबंधित निर्देश उपलब्ध होते हैं। बौद्ध साहित्य के धम्मपद में उन्हें (उसभं परवं वीरं–422) कहा गया है।

अतः यह ऋषभ परम्परा निश्चित रूप से वेदों से प्राचीन है। इसलिए यही आदि परम्परा भी है।

डॉ. बुद्ध प्रकाश ने अपने ग्रन्थ **भारतीय धर्म एवं संस्कृति** में लिखा है, "महाभारत में विष्णु के सहस्त्रनामों में श्रेयांस, अनन्त, धर्म, शान्ति और सम्भव आते हैं और शिव के नामों में ऋषभ, अजित, अनन्त और धर्म मिलते हैं। विष्णु और शिव दोनों का एक नाम सुब्रत दिया गया है। ये सब नाम तीर्थंकरों के हैं। ऐसा लगता है कि महाभारत के समन्वयपूर्ण वातावरण में तीर्थंकरों को विष्णु और शिव के रूप में सिद्ध कर धार्मिक एकता करने का प्रयत्न किया गया था। इससे तीर्थंकरों की प्राचीन परम्परा सिद्ध होती है।"

अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व हुए थे। उनके जन्म स्थान और निर्वाण क्षेत्र के विषय में आज भी अनेक भ्रान्तियाँ हैं। अतः अन्य तीर्थंकरों का कहाँ अवस्थान रहा होगा यह जानना बहुत कठिन है पर असम्भव नहीं। हमारे यहाँ मूल तीर्थ का अनुकरण कर स्थापित तीर्थ भी बनाये जाते रहे हैं। जब मूल तीर्थों पर आवागमन अवरुद्ध हो जाता है तो अपने-अपने क्षेत्र में उस तीर्थ की प्रतिकृति बनाकर पूजा करते हैं। इन्हीं को स्थापित तीर्थ कहते हैं उदाहरण स्वरूप भगवान महावीर का केवलज्ञान क्षेत्र विस्मृत हो जाने के कारण बराकर में स्थापित तीर्थ बनाया गया लेकिन आज उसे ही भगवान की केवलज्ञान भूमि मानने लगे। जबकि वह मूल भूमि नहीं है। इसी प्रकार अन्य तीर्थंकरों की उपस्थिति की खोज अत्यन्त मुश्किल है परन्तु असम्भव

नहीं। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की जन्म भूमि अयोध्या एवं निर्वाण भूमि अष्टापद शास्त्रों में बतायी गयी है। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण उनका समय, उनकी आयु, उनका कद आदि सब तीर्थंकरों से ज्यादा बताया गया है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. राजमलजी जैन ने वैज्ञानिक विश्लेषण करके उनका समय, आयु, एवं कद का उल्लेख किया है। उनके अनुसार—

भगवान ऋषभदेव की उम्र- 84 लाख पूर्वा- 719 वर्ष,
यौवनावस्था- 20 लाख पूर्व-171 साल,
राज्यकाल- 63 लाख पूर्व- 539 साल,
दीक्षा काल- 1लाख पूर्व- 9 साल,
छदमस्थ काल- 100 पूर्व-1 मास,
कद- 8.3 फुट

ऋषभदेव का समय आज से लगभग 10 हजार वर्ष से 20 हजार वर्ष तक के बीच में होना चाहिए ऐसा श्री राजमलजी का मानना है। आज तक की वैज्ञानिक मान्यतानुसार खेती का प्रारम्भ लगभग नौ-दस हजार पूर्व माना गया है। जैन साहित्यानुसार एवं कर्नल जैम्स टॉड ने भी खेती के प्रारम्भ कर्ता ऋषभदेव को माना है। टॉड ने अपने ग्रन्थ एनल्स ऑफ राजस्थान में लिखा है कि—

'Arius Montanus' नामक महाविद्वान ने लिखा है नूह कृषि कर्म से प्रसन्न हुआ और कहते हैं इस विषय में वह सबसे बढ़ गया। इसलिए उसी की भाषा में वह **इश आद मठ** अर्थात् भूमि के काम में लगा रहनेवाला पुरुष कहलाया। इश-आद-मठ का अर्थ पृथ्वी का पहला स्वामी होता है।

आगे टॉड साहब कहते हैं—

"उपर्युक्त पदवी, प्रकृति, निवास स्थान जैनियों के प्रथम

तीर्थंकर आदिनाथ के वृत्तांत के साथ ठीक बैठ सकते हैं जिन्होंने मनुष्यों को खेती बाड़ी का काम और अनाज गाहने के समय बैलों के मुंह को छीकी लगाना सिखाया।"

कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने ऋषभदेव को इस अवसर्पिणी काल के पहले राजा, पहले त्यागीमुनि, और पहले तीर्थंकर बताया है। उनकी स्तुति करते हुए उन्होंने लिखा है—

आदिमं पृथिवीनाथ आदिमं निष्परिग्रहम्।
आदिमं तीर्थनाथ च ऋषभस्वामिन स्तुमः।।

ऋषभदेव कर्मभूमि और धर्म के आद्य प्रवर्तक होने के कारण आदिनाथ के नाम से भी जाने जाते हैं। उनके विषय में प्रो. वी.जी. नायर ने लिखा है—

Adi Bhagwan was the organiser of human society and the originator of human culture and civilization. He lived in the days of hoary antiquity. Adi Bhagwan was the first monarch, ruler, ascetic, saint, sage, omniscient teacher, law maker and architect of humanism and humanitarianism.

जैन परम्परा में तीर्थंकरों की अन्य कल्याणक भूमियों की अपेक्षा निर्वाण कल्याणक भूमि को ज्यादा महत्वपूर्ण माना गया है। जैन साहित्य में पाँच तीर्थों की महिमा का विशेष वर्णन मिलता है। जिनमें आबू, अष्टापद, गिरिनार, सम्मेत शिखर और शत्रुञ्जय उल्लेखनीय है। अष्टापद जो ऋषभदेव की निर्वाण भूमि है उसके प्रमाण रूप में जो भी जैन एवं जैनेत्तर साहित्यिक स्रोत हमारे पास है उससे अष्टापद की अवस्थिति का निश्चित रूप से पता चलता है। वैदिक पुराणों में ये संदर्भ बिखरे पड़े हैं जिसके अनुसार नाभि और उनकी पत्नी मरुदेवी से ऋषभ नाम के पुत्र हुए जो योग में,

तप में, क्षत्रियों में, राजाओं में श्रेष्ठ थे। उनके सौ पुत्र हुए और हिमालय के दक्षिण क्षेत्र को अपने पुत्र भरत को सौंप दिया तथा भरत के नाम से ही इस क्षेत्र का नाम भारत पड़ा। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो हमें इन पुराणों से पता चलती है वह है कि आदिनाथ भगवान जो सब देवों के पूजनीय थे, सर्वज्ञ थे, जिनके चरण कमल का ध्यान कर हाथ जोड़कर सभी देवता तत्पर रहते थे। ऐसे जिनेश्वर कैलास पर्वत पर मोक्ष गए। समस्त जैन वाङ्मय में आचार्य जिनसेन, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्दाचार्य, श्री जिनप्रभसूरिजी, तथा वर्तमान में स्वामी आनन्द भैरव गिरि, स्वामी पड्वानन्द जी और सहजानंद जी महाराज अपने उल्लेखों में कैलाश पर्वत को ही ऋषभदेव का निर्वाण स्थल अष्टापद बताया है। अष्टापद के विषय में विभिन्न शास्त्रों में तथा भिन्न-भिन्न समय में, भिन्न-भिन्न महापुरुषों द्वारा रचित वर्णनों में अष्टापद का कैलाश के रूप में वर्णन मिलना स्वयं में एक पुष्ट प्रमाण है। क्योंकि यदि यह वर्णन काल्पनिक होता तो एक व्यक्ति की कल्पना में होता सभी की कल्पना एक जैसी कैसे हो सकती है।

कैलाश और अष्टापद दोनों का एक ही पर्यायवाची अर्थ है स्वर्ण या सोना। प्राकृत भाषा में अष्टापद को अट्ठावय कहा गया है। जिसका अर्थ भी स्वर्ण होता है। सूर्य की किरणें जब अष्टापद पर पड़ती है तो वह स्वर्ण की तरह चमकता है। कैलाश के दक्षिण में स्वर्ण की खानों

Kailash

का उल्लेख साहित्य में मिलता है। प्राचीन समय से यहाँ पर प्रचुर मात्रा में सोना निकाला जाता था। भारतीय व्यापारी भी वहाँ से सोना लाते थे। इसका वर्णन ए. एच. फ्रेन्के ने अपनी किताब 'दि वेस्टन तिब्बत' में किया है। चीन का इस क्षेत्र पर अपना अधिकार बनाये

16 No. Gumpha Ellora

रखने का यह भी एक कारण है। इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण प्रमाण तीसरी, चौथी और छठी शताब्दी में निर्मित एलोरा की सोलह और तीस नम्बर की गुफाएँ हैं जिन्हें बड़ा कैलाश और छोटा कैलाश कहा जाता है। छोटा कैलाश तो जैन गुफा है और बड़ा कैलाश शैव गुफा मानी गयी है लेकिन वास्तविकता यह है कि ये गुफा भी प्रारम्भ में जैन गुफा ही थी जिसके प्रमाणस्वरूप इस गुफा के शिखर पर जैन मूर्तियाँ आज भी देखी जा सकती है। कैलाश के पश्चिम में जो गुफा है उसमें भी जिन मूर्ति प्रतिष्ठित है जो बौद्धों के अधिकार में है।

यक्ष मान्यता जैनियों में आदिकाल से चली आ रही है। पुराणों में मणिभद्र यक्ष का निवास स्थान कैलाश बताया गया है जो ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर यक्षों का वास, यक्षों की परम्परा को ऋषभ परम्परा से सीधा जोड़ता है। मगुडी के यक्ष घण्टाकर्ण बद्रीनाथ तीर्थ के क्षेत्रपाल है। शिखर जी पर्वत के क्षेत्रपाल भूमियाजी है उसी प्रकार कैलाश के क्षेत्रपाल मणिभद्र यक्ष

है। इसके अलावा कैलाश क्षेत्र में शूलपाणि यक्ष के वास का भी पुराणों में उल्लेख हमें मिलता है।

अष्टापद की विलुप्ति और कैलाश शब्द का प्रचलन इसकी झलक हमें ऐतिहासिक विवरणों से खोजनी पड़ेगी। एक समय ऐसा आया जब सब लोग यह मानने लगे थे कि अष्टापद आलोप हो गया और कैलाश विराजमान है। जहाँ अष्टापद से ऋषभदेव को याद करते थे वहीं कैलाश को शिव के रूप में देखने लगे ऐसा कब से हुआ, इसका उद्देश्य क्या था यह जानना आवश्यक है। यह एक इतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन साक्ष्यों को मिटाने एवं अपना बनाने के लिए उन्हें नये नाम दिये जाते रहे हैं जिसके सैकड़ों प्रमाण हमारे पास उपलब्ध है। अष्टापद तीर्थ का महत्व कम करने के लिए एवं उसे अपना साबित करने के लिये परवर्ती काल में ब्रह्म आर्यों ने कैलाश का नाम दिया। ऋषभदेव के निर्वाण के समय यह पूरी पहाड़ी श्रृंखला अष्टापद के नाम से जानी जाती थी। उनके निर्वाण के पश्चात् उनकी स्मृति में जो स्तूप बना वहीं परवर्तीकाल में कैलाश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उत्तर भारत में जब कोई स्वर्गवासी होता तो उसके लिए कहा जाता कि वह कैलाशवासी हो गया। इस प्रकार ऋषभदेव स्वामी की निर्वाण भूमि की स्मृति कैलाश के नाम से आज भी जीवन्त है। कैलाश यात्रा के तीसरे चरण में डॉ. वेलेजा की रिपोर्ट के कुछ अंशों को मैं यहाँ उद्धृत कर रही हूँ जो अष्टापद की खोज की

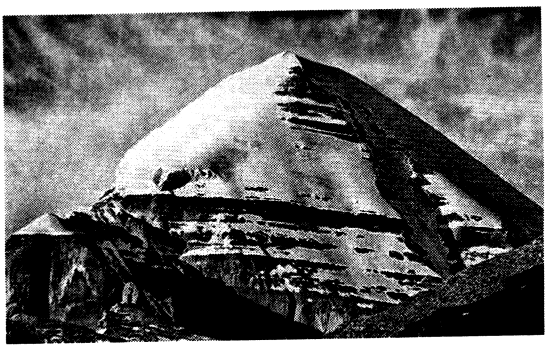

Kailash

दिशा में बहुत ही महत्वपूर्ण है। The earliest archaeological horizon detectable at Mount Kailas belongs to the so-called Zhang Zhung civilization, a broadly defined cluster of cultural orders spanning the first millennium BCE and first millennium CE over a large area of Upper Tibet.

The most salient physical feature of the Zhang Zhung civilization at Mount Kailas in the remains of an extensive network of all stone cobbelled residences known in the native parlance as dokhong These are among the highest archaeological remains found anywhere in Upper Tibet. They also constitute the loftiest permanent residence built anywhere in the world, past or present. An impressive physical feat to be certain.

The south side of Mount Kailas also receives maximum solar exposure, a key natural endowment in a brutally cold climate. Moreover, there are a surprising number of cave sites, valley branches, flats, and water sources lying in the lap of the mountain fit for human habitation.

इन विवरणों के अनुसार कैलाश के स्तूप के समीप में बहुत ही सुसंस्कृत सभ्यता विद्यमान थी जिसे ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में बौद्धों ने अपने प्रभाव में कर लिया। डॉ. बेलेजा ने इनको बौन्पो धर्म से या Zang Zung सभ्यता से युक्त किया है। बौन्पो लोग अपने धर्म का प्रारम्भ शेनारिब से मानते है जिसका अर्थ है सबसे बुद्धिमान व्यक्ति। बौन्पो धर्म के प्रमुख भगवान को तपारिष्ट कहते है जिसका

अर्थ है तप द्वारा अपने शत्रुओं का शमन करने वाला। ये शत्रु हमारे आन्तरिक है। काम, क्रोध, लोभ, माया, मोह आदि। तीर्थंकर तप द्वारा अपने आन्तरिक शत्रुओं को जीतकर जिन और अरिहन्त कहलाते है। तपोरिष्ट शब्द ऋषभदेव के लिए ही प्रयुक्त हुआ है ऐसा मेरा मानना है। बौन्पो से पूर्व यहाँ जो लोग थे वह कौन थे और किस संस्कृति के थे। इसके लिये वहाँ के इतिहास पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है जिससे धुँधली पड़ी तस्वीर स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगी। अभी हाल के शोधों से यह पता चला है कि बॉनपो से पूर्व यहाँ लिच्छवी जाति के राजाओं का शासन था। मनु स्मृति में इन लिच्छवियों को व्रात्य क्षत्रिय कहा गया है। अथर्ववेद में व्रात्य काण्ड मिलता है जो श्रमण परम्परा का पुष्ट प्रमाण है। इसके अलावा साइबेरिया में व्रात्य जाति के लोग आज भी मिलते है इन्हें Buryats कहते हैं जो व्रात्य का ही अपभ्रंश है। ये Buryats श्रमणों को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते हैं। पूर्वी भारत की प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा के सूत्रधार भी ये व्रात्य क्षत्रिय थे जो श्रमण या निर्ग्रन्थ परम्परा के वाहक रहे। विश्व प्रसिद्ध वैशाली गणतंत्र के प्रमुख चेटक भी इसी लिच्छवी जाति के थे जो चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के मामा थे। अतः महावीर का इस जाति से रक्त संबंध था। दूसरे तीर्थंकर अजीतनाथ के समय सगरराजा के अख्यान से यह स्पष्ट होता है कि कैलाश में उस

Taporist (Rishab Dev)

समय नाग जाति के लोग वास करते थे। वहाँ पर जल भर जाने के फलस्वरूप इस जाति को अपना पैतृक निवास छोड़कर नीचे उतरना पड़ा और धीरे धीरे ईरान, ईराक से लेकर अन्य भू-भाग में फैल गये। २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रभाव ईरान तक था। जिसके कारण उस समय ईरान पारस के नाम से विख्यात था जो कालक्रम में पारस से फारस हो गया। तीर्थंकर जहाँ-जहाँ होते और विचरण करते हैं वह क्षेत्र समृद्धशाली हो जाते हैं। बाद में जब दूसरे तीर्थंकर का प्रादुर्भाव अन्य क्षेत्र में होता है तो जहाँ पहले समृद्धि थी वहाँ से लोग पलायन करके नये तीर्थंकरों के समृद्धिशाली क्षेत्रों में आकर बसने लगते हैं। यह एक क्रम है जो चलता रहता है और इतिहास को दिशा देता है।

कैलाश यात्रा के दौरान हमने कुछ तिब्बती किताबें व साहित्य मिला जिसके अनुवाद से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये। Gangkare Teashi (White Kailas) नामक किताब में स्पष्ट लिखा है कि बौद्ध धर्म से पूर्व जैन इस क्षेत्र में रहते थे। उनके प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ थे और अन्तिम तीर्थंकर महावीर। इसी किताब में ऋषभदेव के पुत्र भरत और बाहुबली का उल्लेख आता है और सबसे महत्त्वपूर्ण वर्णन २०वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी का कैलाश में आकर अपने हजारों शिष्यों के साथ तपस्या करने का मिलता है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण विवरण हैं जो हमारे तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता को भी पुष्ट करता है।

इसी किताब में लिखा है कि ऋषभदेव ने कैलाश के पास एक गुफा में तपस्या की थी। अष्टापद खोज यात्रा के तीसरे चरण में कैलास के बेस पर एक गुफा तक हमारे दल के लोग पहुँचे जिसके १३ ड्रिगुंग कहा जाता है क्योंकि यहाँ तेरह छोटे स्तूप बने हुए हैं। इन स्तूपों पर तीर्थंकर मूर्ति तथा लेख है जो अभी पढे नहीं गये है।

मैक्सिकों के प्राचीन स्तूपों, मिस्त्र के पिरामिडो और सारनाथ के स्तूपों की कुछ सामान्य विशेषताएं है। प्रथम यह स्तूप किसी महान व्यक्ति की यादगार में बनाये जाते थे एवं उनकी चिता के अवशेषों पर इनका निर्माण भी किया जाता था। उदाहरण के रूप में बुद्ध के अग्नि संस्कार की राख को चौरासी भागों में विभाजित कर उनके ऊपर स्तूप बनाये गये थे ऐसा उल्लेख मिलता है। इन स्तूपों के नीचे अन्दर की तरफ गुफा का निर्माण किया जाता था। प्रो० ए. के. वर्मा ने अपनी यात्रा की रिपोर्ट में कैलाश पर्वत की इस गुफा को ही ऋषभदेव स्वामी का निर्वाण स्थल मानते हुए लिखा है—

No place in the surrounds of the Kailash-Manasarovar region can impact as much as the cave in Mount Kailash itself and it is no wonder that mystics of various cultural origins retreated to the holy cave. Sri Adinathji couldnot have been an exception and Ashtapad identified as Mount Kailash itself, the Serdung Chuksum (Saptarishi cave) is where Sri Adinathaji would have attained Nirvana and thus rendering it as the holiest of all Jain Pilgrim sites.

I believe a first hand experience of the cave is a must for forming any opinion on the most probable site of Nirvana of Sri Adinathaji. I strongly recommend a visit to the cave to anyone seriously interested. I can conclude based on my convictions that the cave is indeed the site of Sri Adinathaji's Nirvana.

कैलाश के विषय में एक Russian report में लिखा है कि यह

प्राकृतिक पहाड़ नहीं होकर मानव निर्मित पिरामिड़ है। "Nor should one ignore recent Russian studies of Tibet and the Kailas range in particular, the results of which, if true, could radically alter our thinking on the growth of civilizations. One of the ideas the Russians have put forward is that Mt. Kailas could be a vast, human built pyramid, the cen-

The complex of pyramids around Mt. Kailas

tre of an entire complex of smaller pyramids, a hundred in total. This complex, moreover, might be the centre of a world--wide system connecting other monuments of sites where paranormal phenomena have been observed. The idea of the pyramid in this region is not new. It goes back to the timeless Sanskrit epic of the Ramayana."

In shape it (Mount Kailas) resembles a vast cathedral... the sides of the mountain are perpendicular and fall sheer for hundreds of feet, the strata hori-zontal,

the layers of stone varying slightly in colour, and the dividing lines showing up clear and distinct .... which give to the entire mountain the appearance of having been built by giant hands, of huge blocks of reddish stone. (G. C. Rawling, The Great Plateau, London, 1905).

ऋषभदेव स्वामी के निर्वाण स्थल पर स्तूप निर्माण की जैन शास्त्रों में जो उल्लेख दिये है उसकी पुष्टि Swen Heden के इस वर्णन से होती है जो उन्होंने कैलाश परिक्रमा करते समय डिरापुक गुफा से आगे चलने पर किया है।

The holy ice mountain or the ice jewel is one of my most memorable recollections of Tibet, and I quite understand how the Tibetan can regard this wonderful mountain as a divine sanctuary which has a striking resemblace to a chhorten. The monument which is erected in memory of a deceased saint within or without the temples.

यद्यपि अष्टापद की खोज अभी भी पूर्णतयः नहीं हो पायी है फिर भी अभी तक जितने भी वर्णन मिले है उससे यह स्पष्ट जाहिर है कि कैलाश में ही अष्टापद हो सकता है। डॉ. वेलेजा ने नहीं जानते हुए भी अपनी खोज के निष्कर्ष के अन्त में यह माना है कि कैलाश ही अष्टापद हो सकता है। 'Given the findings set forth in this report Sri Astabad being mount Kailash itself seems the most likely prospect.' अतः इन सब उल्लेखों और निष्कर्षों को देखकर तथा जैन और जैनेत्तर साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट और सर्वसम्मत रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि कैलाश पर्वत किसी नार्कशी रूप में ऋषभदेव से सम्बन्धित है।

सन् २००६ की कैलास यात्रा के समय तिब्बत में सागा से कैलाश जाते समय रास्ते में गाँव के मकानों के बाहर स्वस्तिक और चंद्रबिन्दु बना हुआ देखा। पूछने पर यह पता चला कि ये प्राचीन परम्परा से चला आ रहा है। स्वस्तिक को एक मंगल चिन्ह के रूप में सभी संस्कृतियों में अपनाया गया है "The Swastik is one of the oldest symbol still existing in history it is a sacred and Prehistoric symbol that predates all formal religons known to human kind, this common heritage of mankind. The connection between almost all devoloped cultures."

Swastik in Saga Tibet

इस स्वस्तिक का सबसे प्राचीनतम आधार क्या है यह गहन शोध का विषय है।

जैन परम्परा के बाद बौद्ध धर्म से पूर्व तिब्बत में बौन धर्म प्रचलित था जिनके अनुसार कैलाश A 'Nine Storey' Swastik Mountain" कहलाता हैं।

स्वस्तिक की विभिन्न व्याख्याएँ उनको तीर्थंकरों से जोड़ती हैं।

प्रत्येक धार्मिक साहित्य तथा स्थान विशेष में स्वास्तिक की व्याख्या हमें अलग-अलग रूप में मिलती है। (१) ऋग्वेद की ऋचा में स्वास्तिक को सूर्य माना गया है और उसकी चार भुजाओं को चार दिशाओं की उपमा दी गई है। जिस प्रकार सारे जीव जगत को प्राण

देने वाला सूर्य है उसी प्रकार सारे जीवों में ज्ञान के उद्योगता तीर्थंकर भगवान होते हैं और सृष्टि के चारों दिशाओं में इन्हीं के ज्ञान की दुन्दभी बजती है।

(२) यास्क के अनुसाव स्वस्तिक अविनासी ब्रह्मा का नाम है। आत्मा का स्वरूप अविनासी है इस बात को इसी स्वास्तिक भवन में विराजमान तीर्थंकर सबसे अच्छी तरह समझते हैं और बताते हैं।

(३) अनेक देशों में स्वस्तिक का अर्थ अच्छा या मंगल करने वाले के रूप में माना गया है तीर्थंकरों की वाणी सर्वदा मंगलमय होती है इसलिये स्वास्तिक को मंगल का प्रतीक माना जाता है। कहीं कहीं स्वस्तिक को अनन्तकाल का प्रतीक और शांति का प्रतीक भी माना गया है। तीर्थंकर अनन्त ज्ञान के स्वरूप होते हैं। चारों गति से मुक्ति दिलाने वाले होते हैं जो स्वयं भी मुक्त होते हैं और सभी को मुक्ति का पथ दिखलाते हैं। चौबीस तीर्थंकरों का क्रम और काल का चक्र हमेशा चलाये मान रहता है। इसी लिये जैन धर्म में स्वस्तिक को चारों गति तथा अनन्तकाल का प्रतीक भी माना गया है।

तीर्थंकर ही अहिंसा के, शांति के और मंगल के प्रतीक है, कल्याणकारी है। चंदन या रोली से जो हम स्वस्तिक बनाते हैं

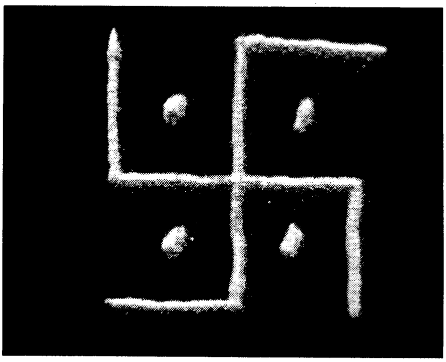

और उसके चारों खानों में विराजमान २४ तीर्थंकरों के चरणों में ही टीकी लगाकर तीर्थंकरों की पूजा करते हैं। परावर्त में भी टीकी लगाकर सभी सिद्ध

आत्माओं की भी पूजा करते हैं। कितना अद्‌भुत है आठ लकीरों से बना हुआ यह आकार, कितने ज्ञान के ज्ञाता होगे भरत महाराज जिन्होंने स्वस्तिक आकार में चौबींस तीर्थंकरों को स्थापित किया, उनको मेरा शत् शत् नमन्। जो भी इन तीर्थंकरों के आराधक रहे वे स्वस्तिक को अपने साथ जहाँ भी गये ले गये अतः पूरे विश्व में स्वस्तिक को सबसे शुद्ध, पवित्र और मंगलकारी माना गया है।

Swastik Seals excavated from Indus valley 3000B.C.

सिन्धु घाटी सभ्यता भी तीर्थंकर परम्परा का प्रमाण देती है। वहाँ उत्खनन से प्राप्त तीर्थंकरों की योगमुद्रा तथा स्वस्तिक सीलों की प्राप्ति से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि तीर्थंकरों की पूजा उस समय भी प्रचलित थी। ३०० ई. पू. सम्प्रति महाराज के काल के सिक्को में भी हमें स्वस्तिक परावर्त और तीन ढिगली का रूप चित्रित मिलता है।

गौतमरास में वर्णन है कि अष्टापद पर चक्रवर्ती भरत ने नयनाभिराम चतुरमुखी प्रासाद निर्मित किया था। श्री धर्म घोष सूरि जी ने भी लिखा है कि भरत चक्रवर्ती ने सिंह निषद नामक चतुर्मुख चैत्य बनाया था और चारों दिशाओं में चार, आठ, दस, दो के क्रम से चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की स्थापना की थी। इसी पर्वत पर गौतम स्वामी ने सिंह निषद चैत्य के दक्षिण द्वार से प्रवेश कर

पहले सम्भवनाथ, अभिनन्दन स्वामी, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु आदि चार प्रतिमाओं को वंदन किया, फिर प्रदक्षिणा देते हुए पश्चिम द्वार से आठ तीर्थंकरों सुपार्श्वनाथ, चन्दप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथजी, श्रेयांस, वासपुंज स्वामी, विमलनाथ और अनन्तनाथ को तत्पश्चात् उत्तर द्वार से दस तीर्थंकरों धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थूनाथ, अरनाथ, श्री मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान महावीर को और फिर पूर्व द्वार से दो तीर्थंकरों अजीतनाथ और ऋषभदेव के बिम्ब को वंदन किया। आज भी कैलाश की परिक्रमा इसी रूप में की जाती है। लेकिन बोन्पो धर्म के अनुयायी कैलाश की परिक्रमा पूर्व से प्रारम्भ कर उत्तर पश्चिम तथा अन्त में दक्षिण की तरफ आते हैं। स्वस्तिक का शब्दकोश में अर्थ है चार मार्गों का मिलन या चार प्रकोष्ठ वाला चतुर्मुख प्रासाद या भवन। किसी भी चतुर्मुख महल को रेखाचित्र से दर्शाने पर यह स्वस्तिक आकार का ही दिखेगा। ईसरो के वैज्ञानिक डॉ० पी. एस ठक्कर के अनुसार – कहीं-कहीं अति प्राचीन नगरों और भवनों का आकार स्वस्तिक प्रतीक के आधार पर होता था। बावन पुराण में लिखा है-

ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्ति कलक्षणम्
योजनानि चतुः षष्टि प्रमाणेन हिरण्मयम्।।२
दन्ततोरण निर्व्यूहं मुक्ताजालान्तरं शुभम्।
शुद्ध स्फटिक सोपानं वैडूर्य कृतस्पकम्।।३

विश्वकर्मा ने भगवान् शिव के लिये कैलाश पर स्वस्तिक लक्षण वाला गृह निर्मित किया था। जो हिरण्यमय था और प्रमाण में चौंसठ योजन के विस्तार वाला था।।२

उस गृह में दन्त तोरण थे और मुक्ताओं के जालों से अन्दर शोभित हो रहा था जिसमें शुद्ध स्फटिक मणि के सोपान (सीढ़ियाँ) थीं जिनमें वैडूर्य मणि की रचना थी।।३

कैलाश यात्रा से आने के बाद इन सारे उल्लेखों को देखने से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मन्दिर में चावलों द्वारा बनाया गया अर्द्ध चन्द्र सम्यग् ज्ञान चारित्र के प्रतीक के रूप में तीन ढिगली और स्वस्तिक सम्पूर्ण कैलाश क्षेत्र का प्रतिबिम्ब है। मंदिरों में चावलों के सर्वप्रथम परावर्त आकार में अर्द्धचन्द्र बनाते है जो अनन्त का प्रतीक है क्योंकि उसमें अनन्त-अनन्त मोक्षगामी आत्माएँ बसी हैं। इसी लिये इसको सिद्ध शिला का प्रतीक भी माना जाता है। यह कहा जाता है कि कैलाश पर्वत के उत्तर में सिद्ध आत्माएँ निवास करती है। ऋषभदेव के निर्वाण के पश्चात् इन्द्र ने वहाँ तीन स्तूप बनाये थे। पहला भगवान का, दूसरा उनके परिवारिक पुत्र और पौत्रों का, तीसरा अनगारों यानि साधुओं का जिन्होंने ऋषभदेव के साथ सिद्ध गति प्राप्त की थी। इन्हीं तीन स्तूपों को ही हम तीन ढिगली के रूप में बनाते हैं। भरत द्वारा बनाये गये सिंह निषद प्रसाद के प्रतीक के रूप में स्वस्तिक बनाना आज भी हमारी परम्परा में जीवन्त है।

कैलाश के नजदीक होने के कारण तिब्बत में जो स्वस्तिक का रूप हमें देखने को मिला उसमें चारों खानों में टीकी लगायी हुई थी। दूरस्थ स्थानों में जिसने जैसे कहा उसे सुनकर और इसका धार्मिक उपयोग देखकर इसे मंगल चिन्ह मान लिया। परिणाम स्वरूप दूरस्थ स्थानों के देशों में टीकी लगाने की परम्परा नहीं है और आकार में सूक्ष्म परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वस्तिक को जहाँ-जहाँ जिस रूप में पूजा गया उसको किसी भी तरह से देखे तो हमें स्वस्तिक आकार में भवन और उसमें चौबीस तीर्थंकर ही विराजमान दिखाई पड़ते हैं। भले ही आज हम तीर्थंकरों की बात भूल गये है लेकिन उनकी स्मृति शान्ति और शुभ, मंगल एवं कल्याणकारी तथा सूर्य के रूप में सारे विश्व में स्वस्तिक के प्रतीक के रूप में जीवन्त है। वैदिक

साहित्य में भी स्वस्तिक प्रकार का भवन सिर्फ देवों और राजाओं के लिये उपयुक्त बताया गया है।

कैलाश क्षेत्र के उपग्रह द्वारा लिये गये चित्रों से जो चतुर्मुख स्ट्रक्चर दिखायी पड़ा वह जगह कैलाश पर्वत के पूर्वी छोर में अवस्थित है जो कैलाश का ही एक हिस्सा है। वहाँ का जो नक्शा है उसमें उस जगह का नाम धर्म राजा नरसिंह उल्लेखित है और ये नाम ही हमारे संदेहों का निवारण करके सिंहनिषधा प्रासाद की जगह को चिन्हित करता है। ये भगवान की चिता अग्नि संस्कार की जगह पर बनाये गये स्तूप के पास की भूमि पर भरत चक्रवर्ती द्वारा बनाये सिंहनिषधा प्रासाद की अवस्थिति को दर्शाता है। धर्म राजा, नरसिंह का अर्थ धर्म के राजा अर्थात् सबसे पहले धर्म का प्रवर्तन करने वाले, नरसिंह का स्पष्टीकरण जैन सूत्रों में वर्णित तीर्थंकरों के लिये पुरिस-सीहाणं शब्द जिसका अर्थ पुरुषों में सिंह के समान निर्भीक, पर आक्रमणकारी नहीं होता है। यह तीर्थंकरों का एक विशिष्ट विशेषण भी है। अतः ये दोनों शब्द सिंहनिषधा प्रासाद के अर्थ से मेल खाते हैं। निषध शब्द का अर्थ राजा के लिये होता है राजा यानि सर्वश्रेष्ठ।

कैलाश ही एक ऐसा तीर्थक्षेत्र है जो सभी धर्मों का श्रद्धा केन्द्र है। सभी धर्मों के लोग वहाँ जाते हैं और अपनी श्रद्धा अर्पण करते हैं। पश्चिमी देशों के लोग भी कैलाश को अत्यन्त पवित्र मानते हैं। इस विषय से सम्बन्धित प्रश्न के उत्तर में प्रसिद्ध Austrian explorer Bruno Baumann ने जो प्रत्येक वर्ष कैलाश की यात्रा करते हैं, कैलाश के विषय में कहा— "I regard Kailash and the region around spiritually as one of the most powerful places on earth and I feel a need to expose

myself to that sacred energy. It is important for me to be in touch with this, it enlightens me and bring me closer to my goal in life."

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न मन में उठता है कि भरत महाराज द्वारा चार, आठ, दस, दो, के क्रम में चारों दिशाओं में तीर्थंकर मूर्तियाँ क्यों प्रतिष्ठित की गई। अगर वे चाहते तो चारों दिशाओं में छः छः तीर्थंकरों को प्रतिष्ठित कर सकते थे। इस विषय में अब तक यह कहा जाता है कि ये मूर्तियाँ तीर्थंकरों के कद की ऊँचाई के अनुसार प्रतिष्ठित की गई। लेकिन ये बात भ्रान्तिकारक प्रतीत होती है। इस पर काफी शोध करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि स्वस्तिक के रूप में चार, आठ, दस, दो के क्रम से हमें तीर्थंकरों के अवस्थान का सूत्र मिलता है। भारत के मुसलमान जब नमाज पढ़ते हैं तो पश्चिम की तरफ नमन करते हैं क्यों कि मक्का का प्रसिद्ध काबा मंदिर पश्चिम में अवस्थित है। इसी प्रकार पूर्व मुखी ऋषभदेव और अजितनाथ की मूर्ति को जब हम नमन् करते है, वंदन करते है तो हमारा वंदन पश्चिम दिशा की ओर होता है अतः उनका जन्म स्थल कैलाश के पश्चिम में होना चाहिए। भगवान ऋषभनाथ और अजीतनाथ का जन्म स्थल हम कैलास के सन्दर्भ में पश्चिम दिशा में ही मानते हैं अतः हमारा सोचना गलत नहीं भी हो सकता है क्योंकि मुस्लिम सम्प्रदाय भी कभी ऋषभ संस्कृति के अनुयायी थे। ऋषभदेव का जन्म शास्त्रानुसार विनिता नगरी में था जिसे अयोध्या भी कहा जाता है। आज विश्व में अयोध्या नाम के कई स्थान है। अतः यह गहन संशोधन का विषय है कि ऋषभदेव की अयोध्या कौन सी थी क्योंकि उसकी प्रसिद्धि इतनी थी कि उसका अनुकरण कर दूसरे क्षेत्रों में भी अयोध्या का नाम प्रचलित हुआ। जिसके कारण अन्य तीर्थंकरों की जन्मस्थली

अयोध्या और मूल अयोध्या में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं का विकास पश्चिमी ऐशिया में सबसे पहले हुआ जिसमें प्रमुख है असीरिया, बेबीलोनिया, ईरान, आरमीनिया, अजरबेजान, बहराइन, साइप्रस, इजराइल, जोर्डन, कुवैत, लेबनॉन, ओमान, कतार, साऊदीअरेबिया, सीरिया, तुर्की, यमन, अफगानिस्तान और यूनाईटेडअरबएमीरत आदि है। इसमें हम Egypt को भी सम्मिलित कर सकते हैं। पश्चिमी ऐशिया में ही ईस्लाम, इसाई, यहूदी, पारसी, आदि धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। यह क्षेत्र सात बड़े समुद्रों से घिरा हुआ है। कैलास के पश्चिम में ही हिमाचल, सिन्धुघाटी, और काश्मीर भी पड़ता है।

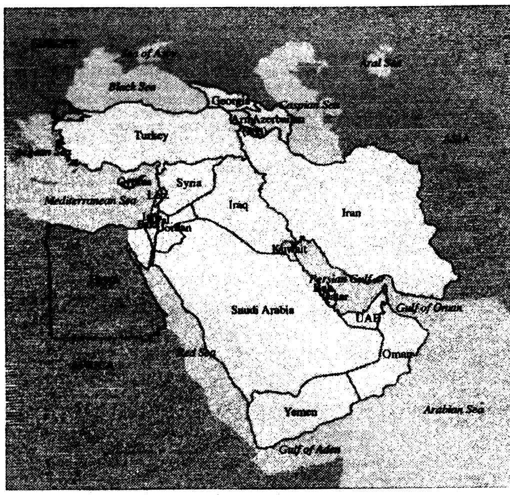

Western Esia and Egypt

इसरो के वैज्ञानिक डॉ. पी. एस. ठक्कर के अनुसार कैलाश के पश्चिम में भारत चीन सीमा पर स्थित तीर्थ पुरी प्राचीन अयोध्या हो सकती है। ऋषभदेव की जन्मस्थली होने के कारण वह तीर्थपुरी कहलाने लगी। प्रसिद्ध आस्ट्रियन खोजकर्ता ब्रोनो बोमेन ने तीर्थपुरी के निकट सतलज नदी के किनारे अनेक ध्वंसावशेष खोजे है

Silver Palace of Garud
Tirth puri

जो वहाँ पर एक उन्नत प्राचीन सभ्यता के होने की पुष्टि करते हैं। ऋषभदेव की जन्मभूमि तीर्थपुरी से बद्रीनाथ क्षेत्र के निकटवर्ती स्थानों पर भी अनुमानित कर सकते हैं। बद्रीनाथ को निर्वाण स्थली मानना उचित नहीं होगा क्योंकि जैनेतर साहित्य में, पुराणों में भी बद्रीनाथ को विष्णु की जन्मस्थली के रूप में मान्यता दी गई है। बद्रीनाथ क्षेत्र में नाभिराजा के चरण होने की मान्यता भी यह प्रमाणित करती है कि यह क्षेत्र ऋषभदेव स्वामी का जन्म स्थल हो सकता है। ऋषभदेव धर्म के आदिस्वरूप थे और सभी प्राचीन धर्मों में उनको किसी न किसी रूप में पूजा गया है। भागवत में उनके विषय में लिखा है—

धर्मब्रवीषी धर्मज्ञ धर्मोसि वृषभ रूप धृक्।
यद्धर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि सद्भवेत।।

(भागवत 1।11।22)

हे धर्मतत्त्व को जानने वाले ऋषभदेव! आप धर्म का उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभरूप में स्वयं धर्म है। अधर्म करने वाले को जो नरकादि स्थान प्राप्त होते है, वे ही आपकी निन्दा करने वाले को मिलते हैं।

कैलास ही एक ऐसी जगह है जहाँ सभी प्रमुख धर्मों के लोग आते हैं और कैलास को बहुत ही पवित्र और पुज्य मानते हैं। 'The Throne of The God में Arnold Heim and August Gansser ने लिखा है– The fundamental idea of Asiatic religions is embodied in one of the most magnificent temples I have ever seen, a sunlight temple of rock and ice. Its remarkable structure, and the peculiar harmony of its shape, justify my speaking of Kailas as the most sacred moun-

tain in the world. Here is a meeting-place of the greatest religions of the East, and the difficult journey round the temple of the Gods purifies the soul from earthly sins.

वास्तव में अष्टापद कहाँ है। आज वह क्यों नहीं दिखाई देता ये संदेह हमारे विश्वास को डगमगाता है। यदि हम श्रद्धा और विश्वास तथा आस्था के साथ इस विषय में संशोधन करे तो हमें किसी न किसी रूप से अष्टापद की अवस्थिति की जानकारी अवश्य मिलेगी और ऐसा ही हो रहा है। कैलाश का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत और विशाल है। लगभग पचास से सौ किलोमीटर की परिधि में हमें खोजना होगा। इस क्षेत्र के नीचे सुरंगे और गुफाओं का जाल सा बिछा हुआ है। जिसका एक छोर कैलाश में है और दूसरा Shambhala माना जाता है। तिब्बती बौद्ध साहित्य में Shambhala बहुत रहस्यमय जगह है जहाँ साधारण व्यक्ति का पहुँचना असम्भव है। भगवान महावीर ने भी कहा था कि अष्टापद पर जाना असम्भव है। जो व्यक्ति वहाँ पहुँच सकेगा और दर्शन कर सकेगा वो इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करेगा। गौतम स्वामी ने भी अपनी सिद्धियों के बल पर अष्टापद के दर्शन किए थे। Shambhala के विषय में भी यही कहा जाता है कि जो व्यक्ति शुद्ध एवं निष्पाप होगा, सम्यक् चरित्र का पालन करने वाला होगा वही Shambhala जैसी रहस्यमय जगह को देख सकता है, वहाँ जा सकता है।

Russian artist Nicholas Roerich ने वर्षों तक सम्भाला की खोज की। अपने चित्रों में, अपने अनुभवों का अंकन किया और इस खोज में वर्षों उस क्षेत्र में भटकते रहे। अनेक वृद्ध लामाओं से भी उन्होंने जानकारी हासिल की और इस संदर्भ में उनकी किताबें भी निकली। आज हमारे लिए अष्टापद और सम्भाला की विचारधारा एक जैसी है।

कहते है उस रहस्यमयी जगह में तीन बड़े हॉल है जिसमें तीर्थंकरों की एक सौ नब्बे फिट रत्नों की मूर्तियाँ है। कीमती रत्नों के प्रभाव से वहाँ हर समय दिन की तरह उजाला रहता है। जहाँ तक मैं समझती हूँ कि ये बेशकीमती रत्नों की तीर्थंकर प्रतिमाएँ जिनमें प्रत्येक की ऊंचाई 190 फिट है। भूतकाल, वर्तमान काल और आगामी चौबीसी की हैं। लगभग इसी तरह की परम्परा हमें चीन के तीर्थों में भी मिलती है जहाँ पर तीन बड़े हॉल रहते हैं। जिसमें एक तीर्थंकर मूर्ति अवश्य रहती है। अष्टापद की खोज की दिशा में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण आधार है। वास्तविकता को जानने का, अपनी प्राचीन गरिमा को पहचानने का और हमारे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिये अष्टापद के अस्तित्व एवं उनकी अवस्थिति को सामने लाना आवश्यक है।

प्रो. वी. जी. नायर के लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋषभदेव का प्रभाव विश्वव्यापी था। उन्होंने लिखा है कि "भारत के बाहर के देशों में ऋषभदेव रेशिफ, अपोलो, तेशव, बाल और मैडिटेरियन लोगों में बुलगॉड के रूप में पूजे जाते थे। फिनिशियन्स जिन ऋषभ को पूजते है उन्हीं को यूनानी अपोलो के रूप में पूज्य मानते हैं। रेशफ ही ऋषभ है जो नाभि और मरूदेवी के पुत्र थे। नाभि चेल्डियन गॉड नाबू और मरूदेवी मुरु है। आरमेनिया के रेशफ निःसन्देह जैनियों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव है। सीरिया के एक नगर का नाम ऋषाफा उन्हीं के नाम पर है। सोबियत आरमेनिया में एक शहर का नाम तेशाबानी है। बेबीलोनिया के शहर इस्बेकजूर ऋषभ का ही अपभ्रंश है। 1200 ई. पूर्व की ऋषभदेव की एक कास्य मूर्ति साइप्रेस के अलासिया से निकली है। यूनानी अपोलो की प्राचीन मूर्ति ऋषभदेव की मूर्ति से मिलती है। टर्की के बोगास्कोई, में मलाटिया में तथा इस्बुकजूर में मुख्य

हिट्टट्री लोगों के प्रमुख देवता के रूप में ऋषभदेव की मूर्तियाँ मिली हैं। सोवियत आरमेनिया के कारमीर ब्लर में खुदाई के दौरान तथा तेशाबानी शहर में खुदाई में कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई है उनमें ऋषभदेव की कांस्य मूर्ति भी है।"

नाभि राजा तथा ऋषभदेव की मान्यता के प्रमाण इस्लाम में भी मिलते है। मुसलमानों ने उन्हें ईश्वर का दूत रसूल नवी पैगाम्बर माना है आदम का अर्थ है सबसे प्रथम और प्राचीन आदमी। हजरत मुहम्मद से पूर्व इस पूरे क्षेत्र में जैन तीर्थंकरों की उपासना प्रचलित थी। Prof Habib ने समनी राजाओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'The Samanias had a big empire in west Asia' अति प्राचीनकाल से मक्का प्रसिद्ध धार्मिक क्षेत्र माना जाता था जहाँ पूरे विश्व से लोग दर्शनार्थ आते थे। However no temple had the fame of the kaaba whose, Pre eminence was universally admitted म्यूर के शब्दों में "A very high antiquity must be assigned to the main features of the religion of Meeca...Diodorus, Secules, writing about half a century before our era, says of Arabia washed by the Red sea. there is in this country a temple greatly revered by the Arabs. These words must refer to the Holy house of Mecca, for we know of no-other which ever commanded such universal hom age...Tradition represents the Kabah a from

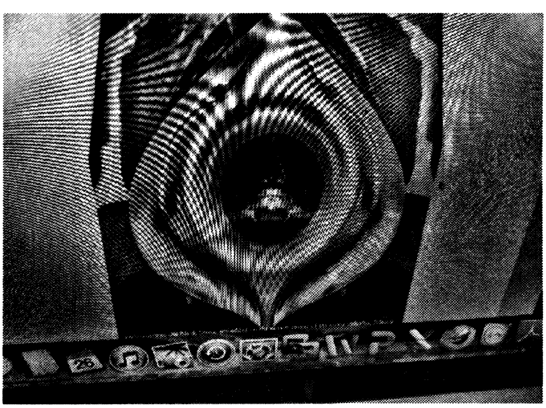

Black Stone of Kaba Temple

time immemorial the scene of pilgrimage from all quarters of Arabia, from yeman and Hadhrmaut, From the shores of persian Gulf, the desert of Syria and the distant environs of Hira and Mesopotamian men nearly flocked to Mecca. So extensive homage must have had its begining in an extremely remote age."

यह माना जाता है कि हजारों साल पहले Arabia में घने जंगल और गहरी नदियां होती थी। यद्यपि आज यह पूरा रेगिस्तान है। उस समय वहाँ हाथी को बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था। आज भी हाथीपथ अरेबिया में मदीना जाने वाले रास्ते पर देखा जा सकता है।

"Elephants......formed a prominent feature of the cavelcades to leave an indelible impression on the long memory of the Arabs."

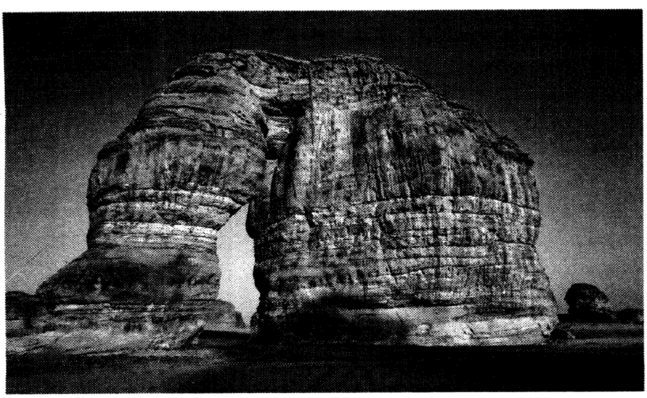

An 'Elephant Road' is traceable in Arabia (leading to Medina).

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ का लांछन हाथी है। मैसोपोटामिया के हाथी कभी विश्व प्रसिद्ध थे। अतः हम निश्चित रूप से अजितनाथ तीर्थंकर को इस क्षेत्र से संबंधित मान सकते है।

गजनी शब्द भी गज से आया है जिसका अर्थ है हाथी।

हजरत मुहम्मद का जन्म भी हाथी के वर्ष में हुआ, ऐसा कहा जाता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस्लाम धर्मावलम्बियों ने हजरत मुहम्मद के पहले के इतिहास को नष्ट कर दिया। इस क्षेत्र हमें जो प्रमाण हाथी के मिल रहे है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह क्षेत्र तीर्थंकर परम्परा से जुड़े हुए थे। अरेबिया से प्राप्त सरस्वती की मूर्ति वहाँ श्रमण प्रभाव को प्रमाणित करती हैं क्योंकि सरस्वती की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ हमें जैनधर्म में ही मिली हैं।

Arabian Saraswati

Rekem Inscription of Petra

माउन्ट होर के पास पेट्रा में एक शिलालेख मिला है जिसमें **rekem** में लिखा है जो ऋषभ का अपभ्रंश है बीस साल पहले यह शिलालेख वहाँ पुल बनने के कारण जमीन में दब गया था।

पेट्रा का सबसे बड़ा मंदिर जिस देवता को समर्पित है वह और कोई नहीं आदिनाथ ऋषभदेव है।

उत्तर पश्चिमी अरेबिया से एक लेख मिला है– An inscription from Beth Fasiel Near Palmyra Pays Tribute to the Jinnaye, The God and Rewarding Gods. वहाँ के इतिहास से ऐसा भी विदित होता है कि अरेबिया में मुहम्मद साहब द्वारा Alat, Manat, Azzah and Habbal की मूर्तियाँ नष्ट की गयी थी। Alat शब्द में द की जगह ल का प्रयोग किया गया जो आदिनाथ के लिए था। Manat नेमिनाथ स्वामी, Habbal बाहुबली स्वामी और Azzah शब्द अजितनाथ भगवान के लिए उच्चारित किए जाते थे। मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थ मक्का के काबा के अन्दर ऋषभदेव की मूर्ति होने का उल्लेख कई लेखकों ने भी किया है। काबा की यह मूर्ति सीरिया से लाई गई थी।

Thomus Maries ने अपनी किताब 'The History of Hindusthan, its arts an its Sciences' में Egypt के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी है। उनके अनुसार पुरी के जगन्नाथ मंदिर की मूर्तियों और Egypt के Sphinx की समानता है क्योंकि दोनों का मूल एक ही है। यह सर्वविदित है कि पुरी का मंदिर ऋषभदेव का मंदिर है। आगे उन्होंने लिखा है कि अफ्रीका का एक भाग श्रमणस्थान कहलाता था। और Babel का Tower पद्मावती देवी का

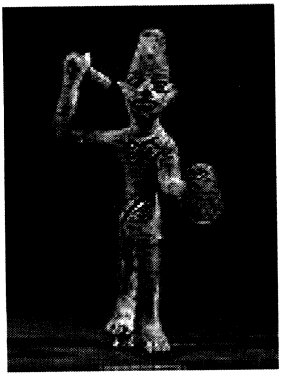

मंदिर था। A considerable portion of Africa was called Sharmasthan alias Sharm or Shem. The tower of Babel was the Padma Mandir alias Lotus Temple on the banks of river Kumudwati which can be no other than the Euphrates (Pp.44.46 of Maurice's book).

Egypt का नाम मिस्त्र इसलिए पड़ा क्योंकि वहाँ पर विभिन्न जातियाँ आपस में घुलमिल गयी थी। Egypt का अर्थ है अजपति। राम के पूर्वज अज इश्वाकु वंश के थे तथा दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ भी इश्वाकु वंश के थे। अतः यह माना जा सकता है कि अजीतनाथ से ही अजपति नाम आया है।

Sir Flinders Petrie of the British school of Egyptian Archaeology discoverd at Memphis, the ancient

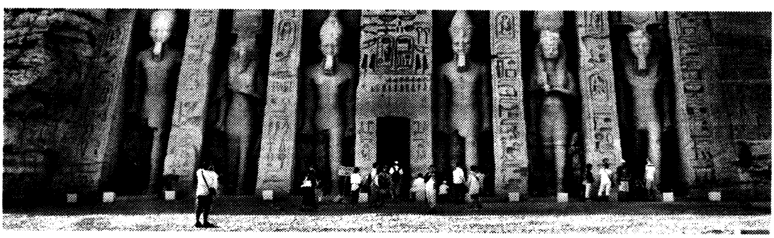

Egyptian dieties

capital of Egypt, some statues of Indian type. Such discoveries prove the existence of an Indian colony in ancient Egypt about 500 B.C. One of the statues represents an indian Yogi sitting crossed legs in deep meditation, the well known Jain posture.

लेखराम जी ने अपनी किताब Kulyat-I-Arya Musafir में लिखा है कि मिश्र की एक पहाड़ी पर भारत के गिरनार पर्वत के समकक्ष तीर्थंकर मूर्तियाँ देखी थी। मिस्त्र निवासियों के धार्मिक

सिद्धान्त जैनियों के धार्मिक सिद्धान्तों से मिलते हैं। वे लोग सृष्टि कर्ता को नहीं मानते आत्मा की अमरता पर विश्वास करते हैं। The religious dogmas of the Egyptians were also mostly like those of the Jains. They had no belief in the creator of universe, and further like the Jains they professed and preached plurality of Gods, whom they described as infinitely perfect and happy. They accepted the existence of an immortal soul and extended it even to the lower animal world They observed the rules of abstinence, and never took flesh and vegetables like radish, garlic etc. in their diet The feeling of Ahimsa was so manifest in them that they did not even wear shoes other than those made of the plant papyrus. They also made nude images of their God Horus.

Canaanite God Reshef

प्राचीन मिस्र के लोग शाकाहारी थे। मिस्र में जब भयानक अकाल पड़ा तब भी वहाँ के लोग शाकाहारी ही रहे थे तथा भारत से अन्न मगाते थे। Diodorus के अनुसार– "For it is reported that at a time when there was a famine in Egypt many were ... but not a man was accused to have in the least tasted of any of these secred creatures. इस सन्दर्भ में प्रो. ए. चक्रवर्ती ने यह विवरण दिया है—

God Resef

'Gymnosophists used already Megasthenes applies very apply to Nirgranthas travellers must travelled to Egypt preaching Ahimsa. They must have influence these people because they considered abolition from meat eating and drinking wine as important ethical aspect of their relegion.. (Encyclopedia Britainica vol. 25 Adn proved.)'

रायबहादुर रमाप्रसाद चन्द (जैन विद्या) ने मिस्त्र से प्राप्त मूर्तियों और सिन्धु घाटी से प्राप्त मूर्तियों की तुलना करते हुए लिखा है। लैट एफ. डी. पी. 159 में खुदी हुई आकृति की अवस्था इण्डस की मोहरों पर खड़े हुए देवताओं जैसी है। तत्कालीन इजिप्शियन शिल्पों में प्रकट प्राचीन राजवंशों में (III. IV.) दोनों तरफ लटकते हाथों वाली मूर्तियाँ थी। ये इजिप्ट और ग्रीक मूर्तियाँ उसी प्रकार के हावभाव बतलाती है। फिर भी इण्डस मुहरों पर की खड़ी आकृतियों में विशेषता के रूप में जो त्याग भावना दिखाई देती है उसका इनमें सम्पूर्ण अभाव है।

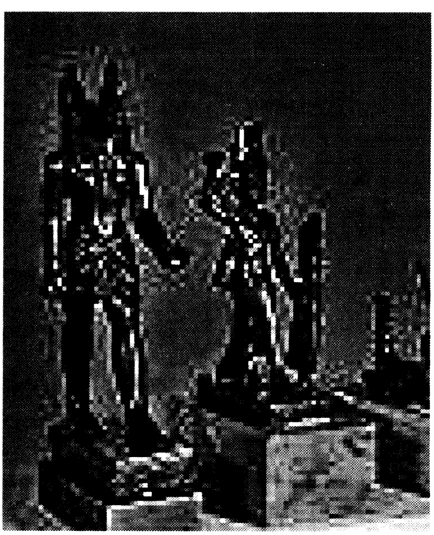

Syro Palestion God Resef

इतिहासकार हेरेन के अनुसार— "The Gods Anat and Reschuf seems to have reached the phoenecians from north Syria at a very early period, So far indeed, it is only certain that they were worshipped by the phoenecians colonists on cyprus Portraits of these deities are displayed on the monuments of the Egyptians, who has appropriates them during there intercourse with syria. The circumstance that the Egyptians were fond of representing both deities with the town goddess of Kadesh on the Orontes point to Reschuf as well as Anat having been received into the northern portion of Syria.

ईसा पूर्व अनेक शताब्दियों से मिस्त्र श्रमण तपस्वियों का विचरण क्षेत्र रहा है। इन तपस्वियों को थेरापुते कहा जाता था। थेरापुते का अर्थ अपरिग्रही मोनी होता है। यह थेर शब्द वास्तव में

Phoenecian God
Reshef or Greek
God Apollo in
British Museum

स्थविर शब्द से निकला है जिसका अर्थ निर्ग्रन्थ मुनि था। जैन कल्प सूत्र आदि में तथा जिन प्रतिमाओं के लेखों में भी थेर शब्द का प्रयोग किया है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने भी थेर शब्द का प्रयोग किया है। मिस्र में कुछ ऐसे पत्थर प्राप्त हुए है जिनपर धर्म चक्र और त्रिरत्न बने हुए हैं। उन पर कोई लेख नहीं है। मेमफिस में भी कुछ भारतीय मूर्तियां मिली है जो जैन मूर्तियों के समान है, एक मूर्ति पर्यकासन में पालथी मारे ध्यानशील है।

जैन तीर्थंकरों के लांछन वृषभ, बैल, सुअर, गैंडा, बकरा आदि को मिस्र निवासी पवित्र तथा पूज्य मानते थे। ऐसा वर्णन वहाँ की साहित्यिक परम्परा में मिलता है। पशुओं की रक्षा करना महान् कर्त्तव्य माना जाता था।

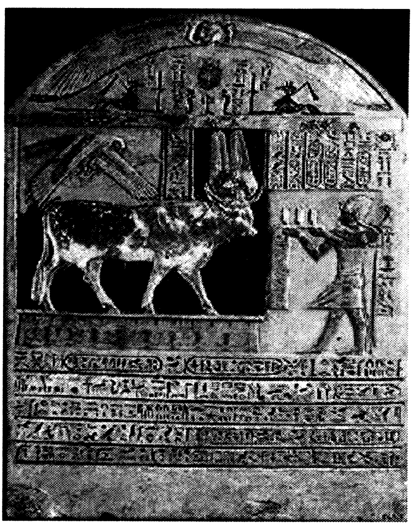
Bull God Egypt

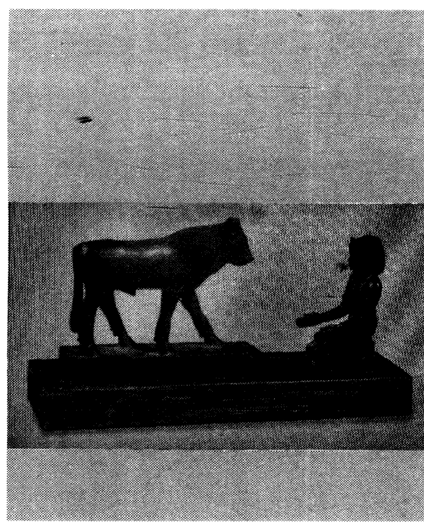
Bull God Egypt

"More over what acts of Religious worship they performed toward Apis in Memphis, Mnevis in Heliopolus, the goat in Mendes, The crocodile in the

lake of Moeris---when any of them dye they are as much concerned as at the death of their own children and lay out in burrying of them as much as all their goods are worth and far more."

'The Egyptians not only paid during honoúrs to the bull apis but to considering him the living image and representative of Osriris (Reshuf).'

Stele of qudesh

ऋषभदेव ने क्षत्रिय जाति की स्थापना की थी। पुराणों के अनुसार क्षत्रियों के पूर्वज ऋषभदेव हैं। ब्राह्मण पुराण 2:14 में पार्थिव श्रेष्ठ ऋषभदेव को सब क्षत्रियों का पूर्वज कहा गया है। महाभारत के शान्ति पर्व में भी लिखा है कि क्षात्र धर्म भगवान आदिनाथ से प्रवृत्त हुआ है। इन्हीं क्षत्रियों को Egypt में खत्ति या खेता कहते है और हिब्रू भाषा में हिट्टी।

1000-500B.C. Sraman Gods

यद्यपि सभी तीर्थंकरों की मान्यता चारों दिशाओं में मिलती है लेकिन जो तीर्थंकर जिस दिशा के है उनकी मान्यता वहाँ पर अन्य तीर्थंकरों से ज्यादा है मिलती है। लेकिन प्रथम तीर्थंकर होने के कारण ऋषभदेव की मान्यता सभी दिशाओं में सबसे अधिक रही है। उनकी मान्यता अफ्रीका, इजीप्ट से लेकर स्पेन तक मिलती है। मेरीग्लाइन्डिंग ने अपने लेख 'The history and significant of the God Risef' में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

The god Reshef (Reshpu, Rashshaf, Reshpa) had his beginnings in Syria, and was particularly important in Ugarit. A war and thunder god, his cult spread throughout Canaan and Phoenicia, with links in Mesopotamia, eventually emerging in Egypt. There are even indications that Reshep was worshipped as far away as Spain.

Numerous statues and carvings of Reshef have been found throughout Egypt and others in Syria. He is almost invariably portrayed as a "smiting god," which means that he is depicted holding a weapon, usually a club, axe or mace, in his upraised right hand, and bearing a shield on his left arm. He wears the White Crown of Upper Egypt with a gazelle's head taking the place of the pharaonic uraeus cobra. He is usually portrayed wearing a Syrian-style beard in acknowledgment of his place of origin, and the short kilt of a warrior.

Major cult centers for the worship of Reshef were located in Ugarit, Byblos and Arsuf (later Appolonia). The Babylonians associated him with their death god Nergal. To the Phoenicians, he was a god of fire and lightning. They knew him as "Rashap of the Wings" or "Rashap of the Birds." In this aspects as a god of well-being, fertility and plenty, some worshippers may have associated him with Baal.

Reshef arrived in Egypt some time during, or shortly before, the Eighteenth Dynasty. He, along with the goddess Astarte, is featured on the famous stele of Amenhotep II (ruled ca. 1425 to 1399 B.C.) near the Sphinx at Giza. According to the stele, the two gods are rejoicing at Amenhotep II's diligence in taking care of his horses.

To the Egyptians, Reshef was a god of war and pestilence associated with their own Montu. The pharaohs of the Eighteenth Dynasty were warrious and hunters and Reshefs warlike nature would have made him important to those rulers. His primary cult center at the Egyptian capital of Memphis serves as evidence of his importance to the royal family, though he was likely worshipped through out Egypt's eastern frontier as well. He was believed to live in an area on the east bank of the "Valley of Reshep."

Reshef was more than a simple thunder and war god. He was also known as a deity approachable by ordinary people as well as by rulers. He was honoured for answering prayers, and used his destructive power against human diseases of all types. His healing abilities were specially valued at Dair el-Medina, where he was also as the patron of honesty.

Although he might be considered a relative latecomer to the Egyptian pantheon, Reshef was held in high esteem by the Egyptians. Universal balance of good and evil was of paramount importance to the Egyptians, so it is not surprising that Reshef's nature contained power over both death and health. He well deserved his place among the complex pantheon of Egyptian gods.

Canaanite Deity या हिब्रू देवताओं में ऋषभदेव को ऋषप,

रेसफ, रेशेफ कहते थे। यहीं से इनकी पूजा का प्रचलन Ugrait में नरगल और ग्रीस में अपोलो के नाम से होने लगा। Israel का प्राचीन शहर Arshef आज हजारों वर्षों बाद भी उनके नाम को जीवन्त रखे हुए है। Rishaf is listed as the divinities of the cities of Atanni, Gunu, Tunip and Shechem in the name of Ra-Sa-ap. He is chief God of Elbia. Jewish Historian Josephus Flavius ने लिखा है कि तेल अबीब से पंन्द्रह किलोमीटर की दूरी पर Apollonia में 600 ई. पू. में जो लोग रहते थे उन्हें अरसफ कहते थे। उनका यह नाम फोनिशियन युद्ध देवता ऋषफ के नाम पर पड़ा। Hellenistic period में यूनानी जब वहाँ आये तब ऋषफ को अपोलो के रूप में पूजने लगे। लगभग इसी समय की यूनान से ऋषभदेव की कास्य मूर्तियाँ मिली है जो ब्रिट्रिश संग्रहालय में रखी हुई है। इनका समय 600 से 500 ई. पू. का।

A German scholar named Von-Kramer (49) has mentioned "that existing Samania community in Central-east Asia were Shramans (Jains)". Mr. G.F. Moor writes that "In 1st century BC many Jain and Buddhist saints were preaching principles of no-violence in eastern Iraq, Sham and Palestine. Innumberable naked jain saints were living in plains and on hills in western Asia, Egypt, Greece and Ethopia and were very famous for their renunciation and their deep philosophical knowledge." Major Gen. J.S.R.Furlong had discovered (36, p.20) some jain religious centres in the cities of Oksinia, Caspia, Bulkh and Samarkand where the principles of non-violence

specially non-killing of animals was followed with respect. Mr. Furlong also mentions (50.p.14) The yatis or Jainsaints, who in man's earliest ages have on all lands separated themselves from the world and dwelt upon pious movements in lonely forests and mountains'.

यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के अनुसार बहुत बड़ी संख्या में जिमनो सोफिस्ट अफ्रीका के इथोपिया और एबीसीनिया में विचरते थे। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के 11th edition Volume 15 pg. 128 में जिमनोसोफ़िस्ट का अर्थ दिगम्बर जैन परिव्राजक बताया गया है।

जैन श्रमणों के प्रभाव से यहूदियों में 200 ई. पू. एक एस्सीनी नामक सम्प्रदाय की स्थापना हुई जो अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलते थे। मेजर फर्लांग ने अपनी कृति Science of Comparitive religion में लिखा है कि 330 ई. पू. अरस्तू के वर्णनों से पता चलता है कि काले सीरिया के निवासी यहूदी तत्वज्ञानी थे जो इक्ष्वाकू वंशीय थे तथा जुदिया में रहने के कारण यहूदी कहलाते थे। विशम्भर नाथ पांडेय के अनुसार इन यहूदियों के ऊपर जैन साधुओं के त्याग का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा तथा उन आदर्शों का पालन करने वालों की यहूदियों में से एक खास जमान बन गयी जो एस्सिनी कहलाते थे। इन्हीं एस्सिनी लोगों के दर्शन का प्रभाव पहले ईसाई तत्पश्चात् इस्लाम पर पड़ा था।

Major Furlong's, declaration in his 'Science of Comparative Religion' "After understanding Aristotelian version, it appears that before 330 B.C., a race of dark-skinned Jewish inhabitants lived, who were spiritually

inclined and belonged to the dynasty of Ikshavaku. Because they belonged to a place called Judah, they were identified as Yahudi" (Jewish). According to Vishambher Nath Pande, these Jews were highly impressed by the discipline of detachment maintained by Jain monks and in order to study this art, they formed a special school of Jews know as Essenese".

ईसामसीह के समय इनकी संख्या अत्याधिक थी। यूनानी लेखक स्ट्रेबों के अनुसार अफलातून जैसे दार्शनिक और विज्ञानवेत्ता उनके दर्शन करने और उनसे उपदेश लेने के लिए आते थे। इतिहास लेखक युसुफ क्रे अनुसार यूनान के पाइथागोरस आदि दार्शनिकों ने अपने अनेक सिद्धान्त इन्हीं से सीखे थे। इसाई धर्म में मठों और महन्तों की प्रथा भी इनसे ही ली गयी है। यहूदियों के धार्मिक ग्रन्थों में ऋषभदेव का वर्णन मिलता है। "Some old testamen passages indicate....Among the pre Israelitish inhabitants of the Nageb were the son of Anakor Anakite and the these Anakites were indentical with or closely related to the Rephain or Rephaites ऋषभ (History of Israel pg. 7)."

In 200 B.C., under the influence of Jain Shramans, the Jews formed a civilized race called Essenese, who believed in teachings of 'Ahimsa.'

These followers of Essenese subsequently shaped the initial foresight of the Christian and Islamic religions. H. Spencer Lewis observes "In recent years the dead sea

scrolls have confirmed the authors references to the essenese and their secret teachings which preceded Christianity." he understands that during the time of Jesus Christ, they had a very large following. According to Strabrow, the Greek writer, "many advanced philosophers like Socrates and other religious leàders, would often come there to offer their respects and seek advice from them". Historian, Yusuf, is of the opinion that philosophers, like Pythagoras and Stoic gained their True Knowledge of wisdom from them. The establishment of Church with it religious order of clergy was the result of these followings.

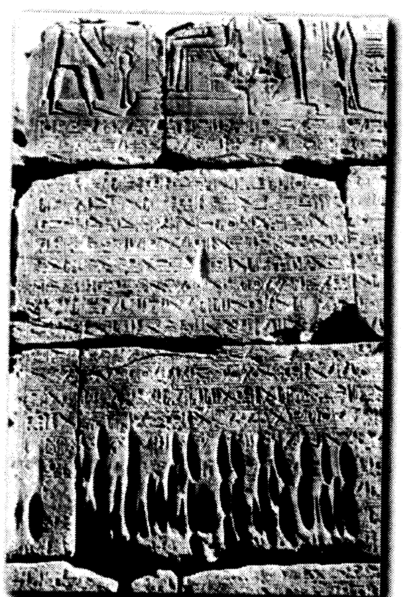

The oldest written document of the treaty between Ramsay II and the Hittite kings

1900 ई. पूर्व में हिटाइट राजाओं और Ram say II **के बीच हुई संधि के सबसे प्राचीन लिखित दस्तावेज मिले हैं। इसमें संधि की शर्तों के साथ हिटाइट देवताओं के नाम है। जिनमें ऋषभदेव का नाम भी है।** From the closing sentence of the treaty which Rameses II concluded with the Kheta (Hittites), it even seems that Reshab and Anat was worshipped in many towns in the Hittites Kingdom"

दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ जो सगर राजा के समय हुए थे उनका भी पश्चिम में जन्म स्थान रहा होगा। उत्तराध्ययन सूत्र के सत्रहवें अध्याय में सगर राजा का साम्राज्य भारत वर्ष तक था ऐसा लिखा है। पुराणों के आधार पर भी सगर राजा का साम्राज्य सीरिया और बेबीलोन से लेकर भारत तक फैला हुआ था। सगर राजा की राजधानी अगैड थी जो अयोध्या की ही पर्याय मानी जाती है। सगर राजा के समय ही उनके 60,000 पुत्रों द्वारा तिब्बत में कैलास पर खाई खोदने का वर्णन आता है। दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ भगवान का लांछन हाथी है। प्राचीन समय में मेसोपोटामियन हाथी बहुत प्रसिद्ध थे। अतः अजितनाथ भगवान के जन्म स्थान की अयोध्या वहीं पर मानी जानी चाहिए। मक्का के पास पेट्रा में जो प्राचीन मंदिरों में जो मूर्तियाँ थी उनमें अजितनाथ भगवान को अजह के नाम से पूजा जाता था। एक और महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य उल्लेख मिलता है। इजेप्ट का नाम अज से पड़ा। अतः अजितनाथ से निश्चय रूप से इस क्षेत्र का संबंध होना स्वाभाविक है।

बेबीलोन का नाम ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली के नामपर पड़ा ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। Thomas Maurice ने अपनी

किताब The History of Hindustan, its Art and its Science में लिखा है कि–The original Sanskrit name of Babylonia is Bahubalaneeya, the realm of king Bahubali.'

बेबीलोन के ईश्वर मानव थे, उनका जन्म और मृत्यु मानव के रूप में ही हुआ ऐसी मान्यता है। तीर्थंकरों के विषय में भी यहीं माना जाता है। बेबीलोन में ऋषभदेव और नाभिराजा के सम्मान में जलूस भी निकाले जाते थे।

"The German excavating society has recently brought to light the old procession street between babylon and Borshippa over which the image of god Nabu used to be Carried on his visit to Marduk at Babylon (History of Mesopotamia);"

सीरिया का नगर रषाफा तथा बेबीलोन का नगर इसबेकजुर ऋषभ शब्द का अपभ्रंश है। रेशेभ चल्डियन देवता नाबू तथा मूरी मरुदेवी के पुत्र माने गये है।

Statue made of meteorites with Swastik

नेबूचन्दनेजर के बनाए मंदिर के ध्वंसावशेष बर्लिंग और तुर्की के संग्राहलय में सुरक्षित है। इन पर वृषभ, गैंडा, सुअर, सांप, सिंह और बाज खुदे हुए है जो जैन तीर्थंकरों के प्रतीक चिन्ह हैं।

डॉ. कालीदास नाग जो एक प्रख्यात दर्शन शास्त्री है उन्होंने मध्य ऐशिया से प्राप्त एक नग्न मूर्ति का चित्र अपनी किताब

डिस्कबरी ऑफ ऐशिया प्लेट नम्बर पाँच में दिया है जो लगभग दस हजार वर्ष पुरानी है तथा उसे ऋषभ मूर्ति के सदृश्य बताया है। यह मूर्ति नग्न तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा जटाएं कंधों पर ऐसी है जैसे ऋषभदेव की मूर्तियों पर होती है।

Bogaz koi sphinx

आज टर्की की खुदाई में जो भी अवशेष मिल रहे है वे भी वहाँ जैनधर्म तथा जैन तीर्थंकरों के अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं। ऋषभदेव को यहाँ पर तेशब कहते है। Bogazkoi में प्राप्त अभी तक का सबसे प्राचीन मंदिर के अवशेष मिले हैं जो समन संस्कृति से संबंधित है। वहाँ से प्राप्त तेशब का Sphinx प्राप्त हुआ है जिसे जर्मन ले गए थे। यह वे वहाँ पर तीर्थंकरों के अस्तित्व का महत्वपूर्ण प्राचीन प्रमाण है।

टर्की में सत्रहवीं शताब्दी तक श्रमण परम्परा कायम थी। ठाकुर बुलाकी दास के संस्मरणों में वहाँ पर जैन मुनियों के विचरण का विवरण मिलता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. नरेन्द्र भण्डारी ने टर्की के Ephesus में Artemis के Temple (550 B.C.) के स्तम्भों पर स्वस्तिक का प्रतीक देखा है। वहाँ पर Artemis को देवी के रूप में पूजा जाता

है। तथा Artemis की मान्यता Resef या Teseb की युगलियां बहन के रूप में है। यह ऋषभदेव के चरित्र से भी पता चलती है। Artemis का एक प्राचीन सिक्का मिला है जिसके एक ओर

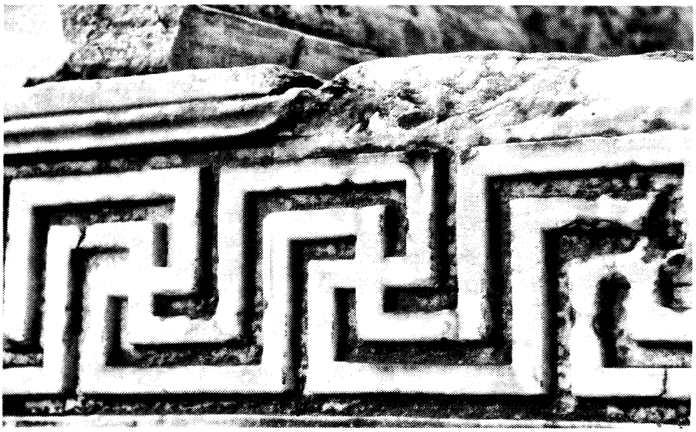

Swastik Ephesus, Turkey

Artemis का तथा दूसरी ओर Bull बना हुआ है। टर्की की संस्कृति यूनान, सीरिया, बेबीलोन तथा चाइना और रशिया से जुड़ी हुई है। Bull God के रूप में तेशब का अंकन Gobeleki

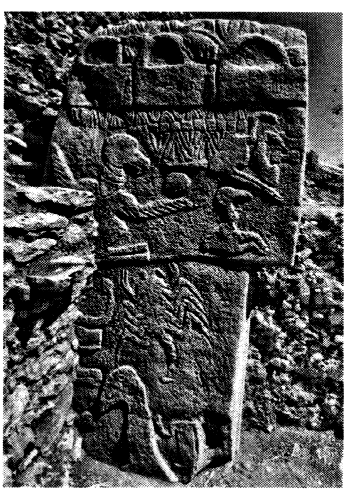

Gobeleki Tepe Turkey

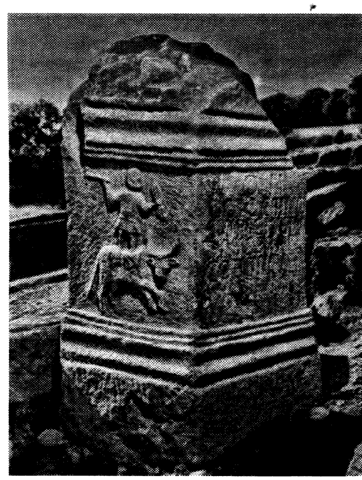

Tesheb on Bull (Turkey)

cave के अलावा अन्य कई जगहों में प्राप्त होना साथ ही स्वस्तिक का पाया जाना तीर्थंकरों के अस्तित्व की पुष्टि करता है।

Jerusalem में सिंह दरवाजा है जिसमें सिंह की मूर्तियाँ बनी हुई है तथा कमल भी बना हुआ है। तेल अबीब से 15 किलोमीटर उत्तर में Herzliya city हैं वहाँ Sidna Hill पर Sidnnali Temple के उत्तर में प्राचीन बन्दरगाह Rishpon था जिसका वर्णन हमें Assiriyan साहित्य में मिलता है। इसे आज Tel Arshaf कहते हैं। ये Kanaanite God Reshef की स्मृति में बसाया गया था। यूनानियों ने वहाँ 400 ई. पू. में कब्जा किया और Reshef को Apollo के रूप में पूजने लगे। तब से इस शहर का नाम Apollonia पड़ा। सातवीं शताब्दी के बाद अरबो ने इस कब्जा किया और इसका नाम Arshaf पड़ा। यूनानी लोग स्वस्तिक को Apollo के साथ जोड़ते हैं। 1800 B.C. में Byblos lebnan में God Reshef की स्मृति में मंदिर बनाया गया था।

बलगेरिया के Altimir शहर में खुदाई में स्वस्तिक प्रतीक मिला है।

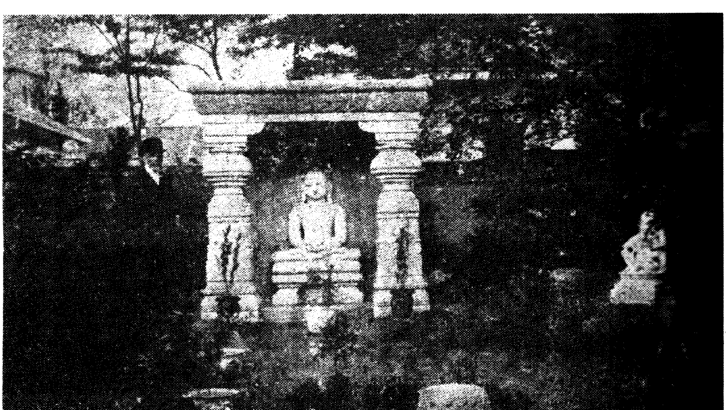

Budda pest में चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का मंदिर खुदाई में जमीन से निकला है।

उत्तर में स्थापित दक्षिण मुखी जिन चार तीर्थंकरों को हम नमन करते है वे उत्तरी क्षेत्र के थे सम्भवनाथ, अभिनन्दन स्वामी, सुमतिनाथ और पद्मप्रभु इनका क्षेत्र पश्चिम चाइना, मंगोलिया, साइबेरिया, रसिया और टर्की होना चाहिए। साइबेरिया के व्रात्य क्षत्रियों की विशेषताओं के विषय में लिखा है—साइबेरिया के व्रात्य बहुत ही दयालु और शान्ति के प्रतीक थे। वे दूसरों का ही नहीं बल्कि पशु एवं वनस्पति के प्रति भी सम्मान रखते थे। ऋमणों के पवित्र जगहों पर पशुवध घोर अपराध माना जाता था। वे वन संरक्षण करते थे जिससे नदियां पशु-पक्षी तथा वनस्पति सब सुरक्षित रहे। “Buryats people were always characteresed by disinterested kindness and peacefulness, respect for people, nature and all creature being Nobody even thought of hunting at Sraman sacred sites, Killing of a stepped eagle and a swan was one of grevious sin. The swan ‘Khun Shubuun was a main possessed by moral soul which is source of eternal love and worship. Buryats gaurded forest becouse they knew that an abindance of river lake wealth and diversity of animal and vegetal life depends on forest,. Even the construction of Buryat foots, was shown an attitude of care towards nature. The toes of Buryat foots were turned up so as to prevent stumbling over the even ground or harming it in any way.”

मंगोलिया और साइबेरिया के कुछ पहाड़ बहुत ही पवित्र

माने गए है जिनमें– **BurhanHaldun, Altai, Sayan Mountain** प्रमुख है। मंगोलिया की राजधानी उल्टई बाटर चार पवित्र पहाड़ों से घिरा है जिनमें एक सौगिनो हैरहन है। इन चारों पर्वतों की पूजा वहाँ के श्रमण करते हैं। यह क्षेत्र चार तीर्थंकरों की भूमि है अतः इसी संदर्भ में यहाँ खोज करने की आवश्यकता है। यहाँ पर **Knots** की परम्परा देखने को मिली जो निर्ग्रन्थ परम्परा से जुड़ी हुई है। निर्ग्रन्थ का अर्थ है जिन्होंने अपनी सभी गाँठों को खोल दिया और समस्त अन्तरंग व बहिरंग से मुक्त हो गए।

Horse depicted on coin Mangolia

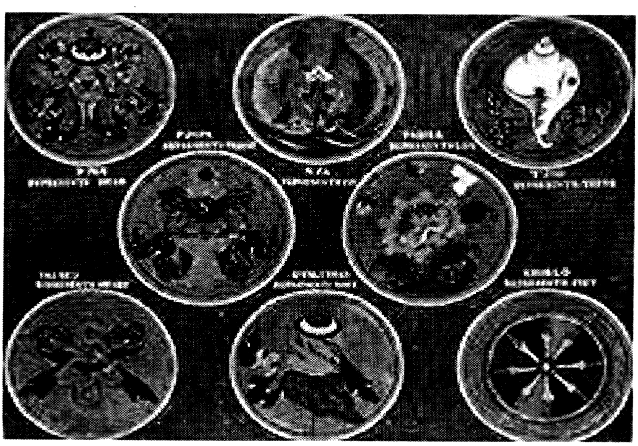

Ashtamangal, Mangolia

मंगोलिया के व्रात्यों की mythology में बैल और घोड़े को बुद्धिमत्ता में प्रखर माना जाता है। तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ का प्रतीक घोड़ा माना जाता है। मंगोलियन घोड़ें विश्व प्रसिद्ध रहे हैं। मंगोलिया में आज अनेक बौद्ध बिहार है जिनमें कुछ पहले जैन केन्द्र थे। मंगोलिया के बिहारों में गाण्डङ्ः प्रमुख बिहारों में है। इस बिहार का द्वार शंख, चक्र और मीन के चित्रों से सजा है, तथा दो सिंह बने है। मुख्य द्वार पर धर्म चक्र और मृग है। इससे स्पष्ट है कि यह बिहार पहले जैन केन्द्र था। शंख, चक्र, मीन, सिंह, मृग आदि जैन प्रतीक है बौद्ध नहीं। जब भारत में ही इतिहासकारों ने ऐसी भूले की है तो विदेशों में यह एक सामान्य बात है। इसी मन्दिर का तीसरा भवन चन्दन जोवो भवन है जिसका अर्थ चन्दन के प्रभु है। इसके छत्र पर धर्म चक्र बना है। यहाँ के पुस्तकालय में स्थित पटल का वस्त्र नवरत्नों से कढ़ा है जिसके मध्य में स्वास्तिक और चारों ओर अष्टमांगलिक चिन्ह है जो केवल जैन

Swastik God Norway

Iron age, Sweedon

परम्परा में प्राप्त होते है। मंगोलिया में जैन मंदिरों के खण्डहर आज भी देखे जा सकते हैं। लटाविया के प्रमुख लेखक पादरी मलबरगीस ने 1956 ई. में लिखा था कि लटाविया, जर्मनी और रूसियों के पूर्वज भारत से आकर यहीं पर बस गए थे। ये भारतीय पणि थे जो व्यापार के लिए अन्य देशों में जाते थे। लटाविया, फिनलैड, लिथुआनिया आदि देशों की भाषा में अनेक संस्कृत शब्द प्रचलित है। कालान्तर में पणि व्यापार छिन्न-भिन्न होने के बाद भी वहाँ की सांस्कृतिक स्थिति अपरिवर्तित रही। फिनलैंड का नाम वहाँ बसी पणि जाति के नाम पर पड़ा प्रतीत होता है। फिनलैंड में 17वीं शताब्दी के बाद में ही इसाई धर्म का प्रभाव हुआ था। श्रद्धेय श्री विसम्भरनाथ पाण्डेय जो कई राज्यों के गवर्नर रहे उन्होंने कोलकाता की एक सभा में अपने वक्तव्य के दौरान मंगोलिया के जैन पुरातत्वों के विषय में जानकारी दी थी जो बहुत ही महत्वपूर्ण थी। An Indian Archaeologist in his article 'Jain Church' in a paper in Bombay News (4th July 1934) wrote that in Mongolia, at one time a large population of the Jain community with many of their temples used to reside there. Today ruins of these temples and statues are still being excavated by archeologists.

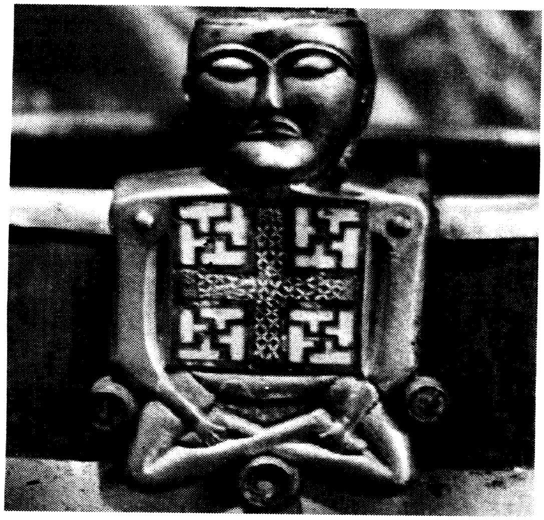

Swastik God Norway

चीन तथा रूस It was long prior to Parsava and Mahavira, that India was the fruitful Centre of religion from 7th century B.C. and inwards. The Trans-Himalayan, Oxiana, religious views and practices as Indian Jain and Budhists claim and almost historically show that above a score of their saintly leaders perambulated the Eastern world long perior to the 7th century B.C. We may reasonably believe that Jainism was very anciently preached by them from China to Kaspiana. It existed in Oxiana and north of the Himalaya 2000 years before Mahavira.

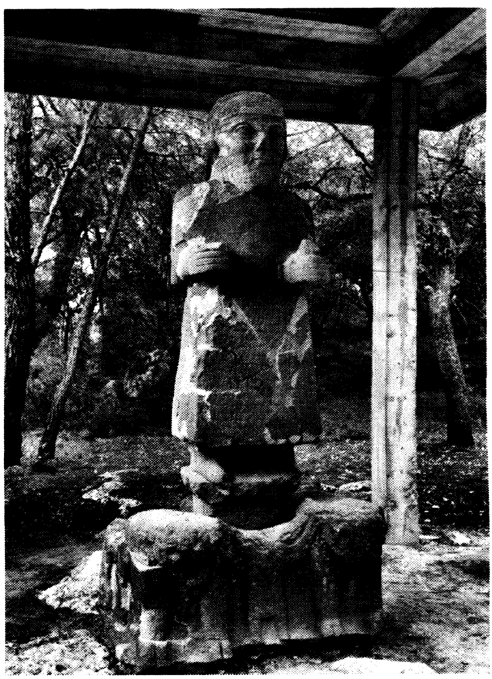

Tirthankar of Karatepe

आज से 4500 वर्ष पूर्व इन क्षेत्रों में जैन धर्म का अस्तित्व विद्यमान था।

Prof. Yuri Zadneprovsky of the Leningard Institute of Archaelogy said at a press conference at New Delhi on June 20, 1967 that there had been contacts between India and Central Asia for about 100000 years "from as early as the stone age," and naturally traces of Jainism were there. South Uzbekistan के Termiz में Kara Tepe में ध्यान मुद्रा में जैन मूर्ति कमल के फूल के ऊपर प्रतिष्ठित है।

Karatepe

Mr. J. A. Dubai, the author of "The Description of Character, Manners and Customs of the People of India and English by the East India Company in 1817 from French, writers in the preface :

"There was a time when Jainism flourished right from the Caspian Sea to the Bay of Kamachatka. Not only this, its followers could be found in Europe or even Africa.

आज चीन का नाम बौद्ध धर्म से जुड़ा हुआ लगता है लेकिन बौद्ध धर्म चीन में लगभग दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था। उससे पूर्व वहाँ पर Confusious धर्म तथा उससे पूर्व Lao जिसे आत्मधर्म भी कहते है प्रचलित था। जिन, श्रमण तथा व्रात्य परम्परा के साथ Lao धर्म की परम्परा जुड़ी हुई है। जिन, श्रमण, व्रात्य आदि नाम हमें यहाँ मिलते हैं जो इस क्षेत्र को सीधे-सीधे तीर्थंकरों से जोड़ते हैं। जैन मान्यतानुसार तीर्थंकरों को जिन और बुद्ध दोनों ही कहा जाता है। उसी प्रकार बौद्ध धर्म में बुद्धों को जिन कहा गया है। चीन में आज भी तीर्थंकरों को बुद्ध कहने की परम्परा देखी जा सकती है। जापानी विद्वान Okakura के अनुसार प्राचीन एक समय Loyang प्रान्त में 300 भारतीय मुनि और 10,000 भारतीय परिवार रहते थे। प्राचीन श्रमण या अर्हत् संस्कृति सिन्धुघाटी, अफगानिस्तान, ईरान, ईराक, इजिप्ट, सीरिया, असीरिया, टर्की से फैलती हुई रशिया, साइबेरिया, मंगोलिया और चीन तक पहुँची तथा चीन से वियतनाम तथा अन्य दक्षिण पूर्वी ऐशिया के देशों में प्रतिष्ठित हुई।

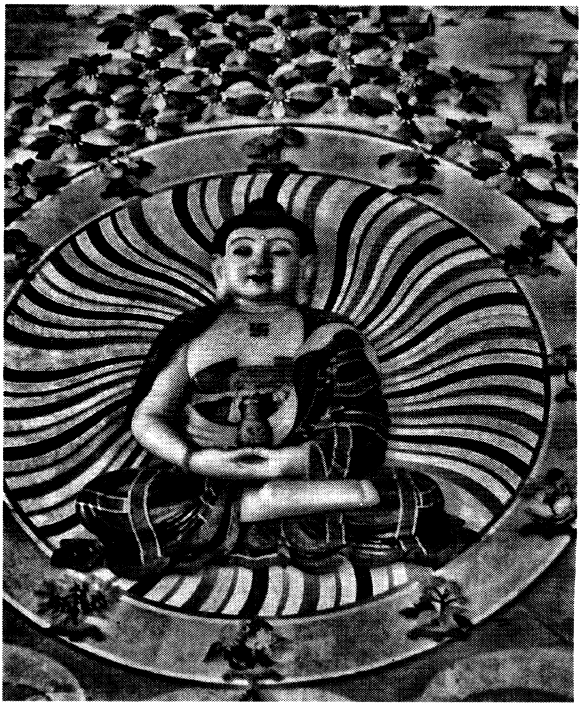

Right Shaped Swastik in China

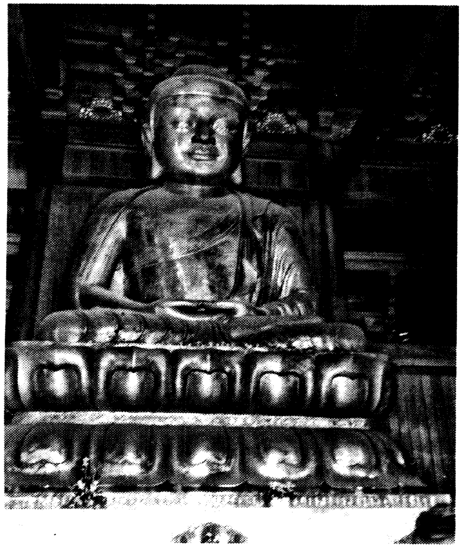

Tirthankara on Lotus, China

इश्वाकू और सूर्य वंश का प्रादुर्भाव ऋषभ परम्परा से हुआ। चीन में 1500 B.C. में Shang Dynesty शासन करती थी। ये सूर्यवंशी क्षत्रिय थे जो श्रमण संस्कृति पालन करते थे। पश्चिमी तिब्बत में प्राचीन Sang Sung Civilization का जो वर्णन मिलता है और जिन्हें Bonpo धर्म से सम्बंधित माना गया है। ये भी व्रात्य क्षत्रिय थे। इसके बाद Hsia वंश का शासन आता है। ये भी इक्ष्वाकू सूर्य वंशी थे। मार्कोपोलो ने Canton शहर में 500 मूर्तियाँ होने का वर्णन किया है। जो तीर्थंकर मूर्तियाँ थी। उसने Suju शहर का वर्णन किया है। Kiang Han प्रान्त के Su Chau city में एक बहुत बड़ा मंदिर है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान के बुद्धों की मूर्तियाँ है जो भूत, वर्तमान और भविष्य के तीर्थंकर चौबीसी के अनुसार है। Dragon चीन का प्रमुख धार्मिक प्रतीक है जो तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रभाव को परिलक्षित करता है। प्रार्श्वनाथ का प्रभाव भारत में ही नहीं अपितु सभी क्षेत्रों में रहा है। Marco Polo ने अपने विवरण में लिखा है कि Hang Chau शहर की प्रमुख मूर्ति कमल पर प्रतिष्ठित है जो छठें तीर्थंकर पद्मप्रभु का प्रतीक है। Quang Zhouk के Janjia Ochang में जो मूर्ति मिली है वो भी तीर्थंकर मूर्ति ही है। चीन में

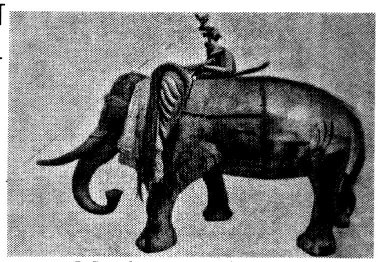

Monkey on elephant
Out side Mahavira hall

Monkey God की मान्यता है। चीन और तिब्बत के लोग वानर को अपना पूर्वज मानते हैं। चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन स्वामी का

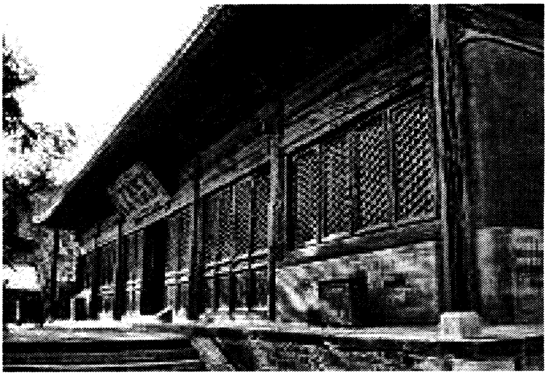

Mahavira hall of Dajue Temple

लांछन कपि है। चीन में होन्जो को हनुमान से सम्बन्धित माना जाता है। पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ का लांछन चकवा और छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु का प्रतीक लालकमल माना जाता है जो कि चीन की बौद्ध प्रतिमाओं में परिलक्षित होता है। वहाँ पर तीर्थंकर केवलज्ञानी, तत्त्वज्ञानी, आचार्य या साधारण ज्ञानी सभी को बुद्ध कहने का प्रचलन है।

Three Statues Mahavira hall of Dajue Temple

Little Buddha, Big Buddha, Master Buddha, Disciple Buddha । बीजिंग के मंदिर में अन्य बुद्धाओं के साथ ऋषभबुद्ध और अजीतबुद्ध की मूर्तियाँ भी है। वहाँ के मंदिरों के हॉल का नाम महावीर हॉल है और वे बुद्ध का ही एक नाम महावीर बताते है। अभी हाल में एक मूर्ति की फोटो कॉपी मुझे वहां से भेजी गयी जिसमें स्वस्तिक सीधा बना हुआ था जो सामान्यतः वहाँ इस रूप

में नहीं होता। उत्तरी चीन की प्राचीन गुफाओं में जो प्राचीन मूर्तियाँ पायी गयी है वे सभी तीर्थंकर मूर्तियाँ है।

चीन की Dunhang Caves, Yangang Caves और Mangao Caves आदि में भी तीर्थंकर मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। Guang Zhou के Six Banyan Trees Pagoda में महावीर हॉल के अन्दर तीर्थंकर मूर्तियाँ आसीन है। चीनी साहित्य में प्राचीन श्रमण (Wu) राजाओं का वर्णन प्रागऐतिहासिक काल में मिलता है। उनकी राजधानी Sozhow थी जिसके पास Tiger Hill था। Guang Zhou के HualinTemple प्राचीनतम मंदिरों में से एक है उसमें 500 अर्हतों की मूर्ति है जिनका निर्वाण हुआ।

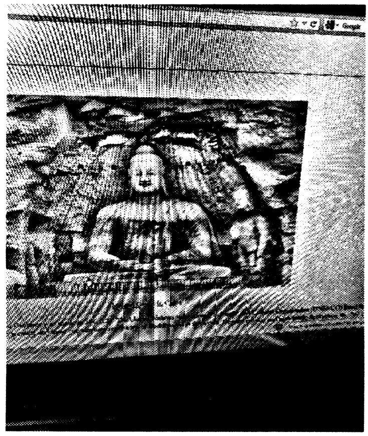
Mogao Caves China

Xian का अर्थ है अमर। अतः Wu xian का अर्थ है Immortal Shraman श्रमण को चीन में Xian Man कहते थे। 600 बी. सी. से 100 ई. पू. तक झाउ और हान वंश का शासन चीन में रहा। इस समय के चीनी ग्रन्थों में Wu श्रमणों का नाम 300 से भी अधिक बार प्राप्त होता है। लेखक De Groot ने लिखा है The Wu in Ancient Chaina no doubt held a place of a great importance.

Tirthankar Statue

चीन के Xiamen city में Nonputaou Temple हैं। ये बहुत ही प्रसिद्ध मंदिर माना जाता है। जिसका अर्थ है नाथपुत्त का मंदिर। बौद्ध साहित्य में भगवान महावीर के लिए नाथपुत्त का प्रयोग किया जाता था। इस मंदिर में महावीर हॉल भी है। ये मंदिर छठी शताब्दी में Tang Dynasty के समय में बना था। इसमें Guanyin Buddha की मूर्ति भी है। जो गौतम स्वामी की मूर्ति हो सकती है। क्योंकि महावीर के हॉल के अन्दर शाक्य मुनि बुद्धा, काश्यप मुनि बुद्ध और मैत्रेय बुद्धा की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

Nanputau Temple

Dague में भी हमें महावीर हॉल निर्मित मिलता है।

Liaoning Province चीन में भी महावीर हॉल है।

Mahavir Hall of Nam-Tin-Chuk Temple Hongkong

Hong-Cong के Fu Yung Shang Tsuen Wan में Nam Tin Chuk Temple में महावीर हॉल है।

कर्नल जेम्स टाड के अनुसार Neminatha the 22nd of the Jinas and whose influence, Tod believed has extendd into China and Scandinavia where he was worshipped under the names of Fo and Odin respectively.

पूर्वी क्षेत्र के दक्षिण पूर्वी चाइना, वियतनाम, कम्बोदिया, जावा, सुमात्रा, वर्मा, लाउस, बंगलादेश, मलेशिया, आदि देशों में सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, आठवें चन्दाप्रभुजी, नवें सुविधिनाथ, दसवें श्री शीतलनाथजी, ग्यारहवें श्री श्रेयांशनाथजी, बारहवें वासपुज्यजी और तेरहवें विमलनाथजी और चौदहवें अनन्तनाथजी के जन्म स्थल के जो नगर है उनको हम चिन्हित कर सकते हैं। वाराणसी, चन्द्रपुर, काकंदी, भद्दिलपुर, सिंहपुर, चंपापुर, कंपिलपुर, हस्तिनापुर और अयोध्या, आदि प्राचीन नगर यहाँ पर अवस्थित हैं। यहाँ पर जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में आज भी दृष्टिगोचर होती हैं। स्वस्तिक, अर्द्धचंद्र, मगर, श्रीवत्स, गैडा, महीष, वरहा एवं गरुड़ की मान्यता यहाँ पर भी दिखायी देती हैं। इन्डोनेशिया का राष्ट्रीय ध्वज का प्रतीक गरुड़ माना गया है। भारत से सुवर्ण भूमि यानि वर्मा होते हुए चीन में जाने का यह एक प्रमुख मार्ग था जिसपर बराबर

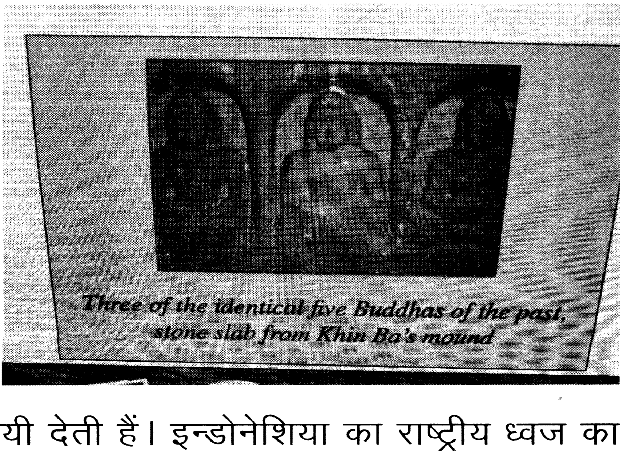

आवागमन होता रहता था यह कहा जाता है कि वर्मा के **Mount Popa (Bagan)** में **Win Daug Cave Hill** में चार लाख मूर्तियाँ थी। इसलिए इसे **Mountain of God** के नाम से जाना जाता है।

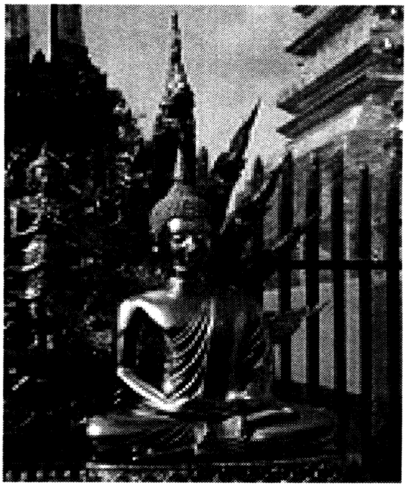

Borneo Island का एक बड़ा भाग श्रावक कहलाता है।

Borobudur का मंदिर जावा द्वीप में स्थित है। यह इन्डेनेशिया की राजधानी जाकारता से 500 किलोमीटर पूर्व में है। यहाँ पर संस्कृति का विकास उत्तरपूर्व में चाइना से और दक्षिण पश्चिम में भारत से प्रभावित रहा है। यह माना जाता है कि उड़ीसा के सम्राट महामेघवाहन खारवेल का इन द्वीपों पर अधिपत्य रहा था तथा इन क्षेत्रों में जैन धर्म का प्रचार और प्रसार 100 B.C. में उनके द्वारा हुआ। प्राग्‌ऐतिहासिक काल में यह शाक द्वीप कहलाता है। यहाँ का विश्व प्रसिद्ध मंदिर जिसको हिन्दू अपना तथा बुद्ध अपना कहते हैं। इसकी रचना नन्दीश्वर द्वीप के तीर्थ की तरह है। यदि ये बौद्ध मंदिर होता तो थाई और चाम जाति के लोग जो स्वयं बौद्ध थे इसको नष्ट नहीं करते।

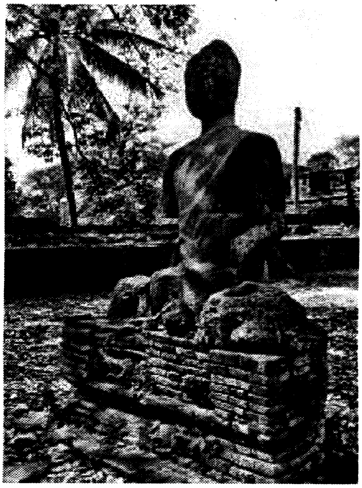

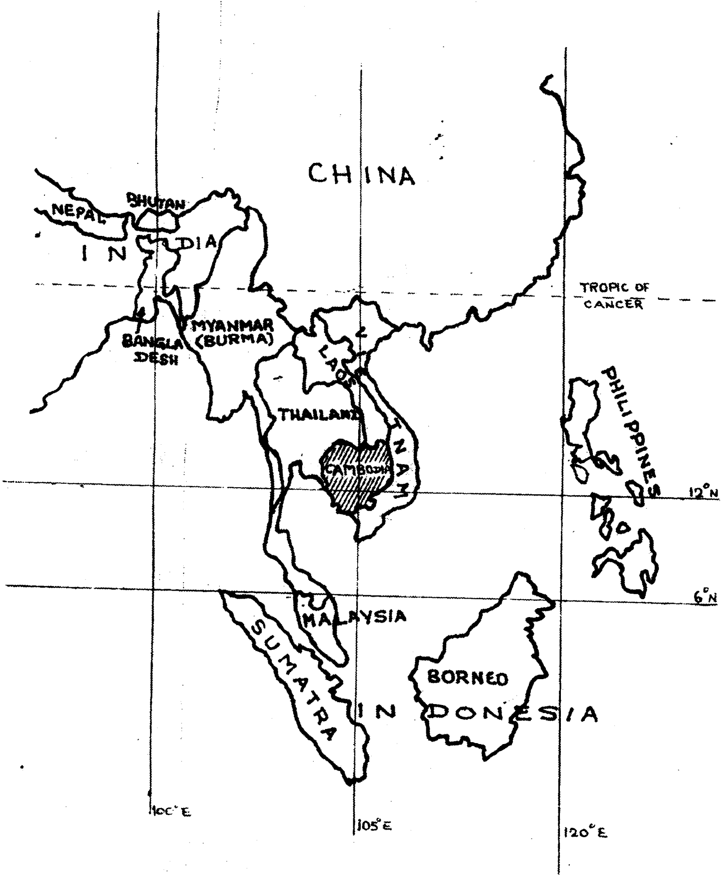
CHINA
NEPAL
BHUTAN
INDIA
TROPIC OF CANCER
MYANMAR (BURMA)
BANGLA DESH
LAOS
THAILAND
CAMBODIA
NAM
PHILIPPINES
12°N
6°N
MALAYSIA
SUMATRA
BORNEO
INDONESIA
100°E
105°E
120°E

Fig. 1

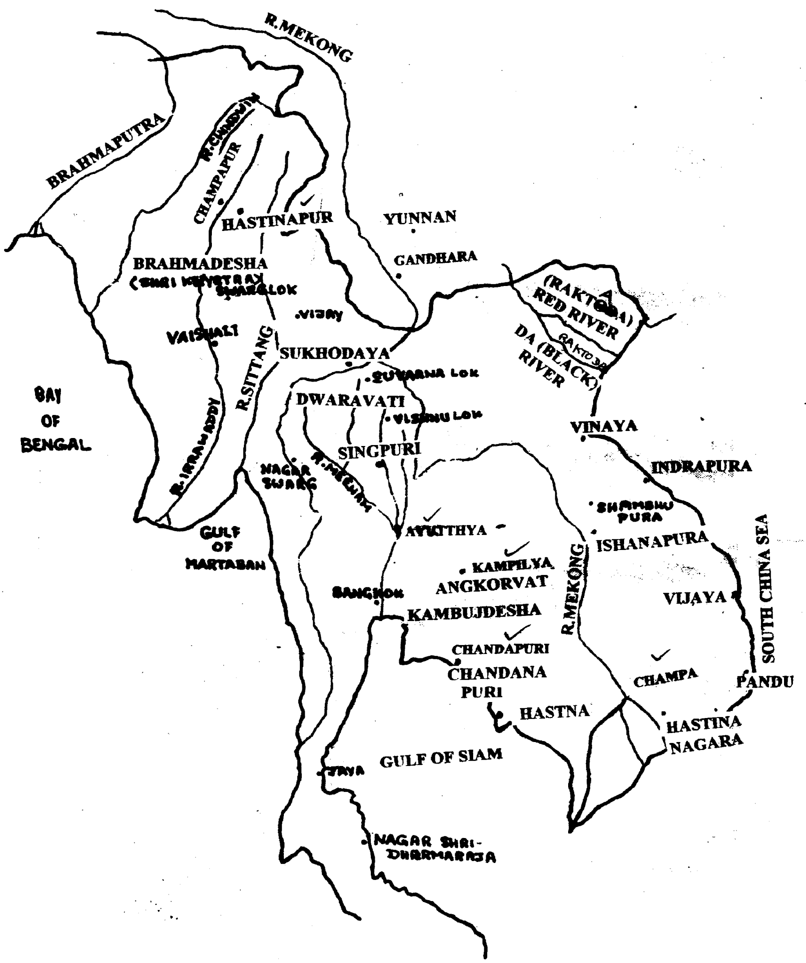
R.MEKONG
BRAHMAPUTRA
CHAMPAPUR
HASTINAPUR
YUNNAN
GANDHARA
BRAHMADESHA
VAISHALI
R.SITTANG
SUKHODAYA
BAY
OF
BENGAL
RED RIVER
DA (BLACK)
RIVER
DWARAVATI
SINGPURI
VINAYA
INDRAPURA
NAGAR
SWARG
GULF
OF
MARTABAN
ISHANAPURA
KAMPILYA
ANGKORVAT
BANGKOK
KAMBUJDESHA
R.MEKONG
VIJAYA
SOUTH CHINA SEA
CHANDAPURI
CHANDANA
PURI
CHAMPA
PANDU
HASTNA
HASTINA
NAGARA
GULF OF SIAM
NAGAR SHRI-
DHARMARAJA

श्री जिनेश्वर दासजी जैन ने दक्षिण पूर्वी एशियन देशों के विषय में गहन अध्ययन किया है। उनके अनुसार— Alex Wayman (19) mentions that on the basis of an inscription of Candi Plaosan of pre-ninth centuary, the temple was built by constant flow of Gurjara. Here the word Jina clearly refers to Tirthankara. The historians have been calling Tirthankara Padmasan Mudra as Ḍhyani Buddha. Kemper believes that, besides other things, Borobudur represents the Universe. To achieve this the architect used a well established device the Stupa. The stupas are a spherical body having a circular or square base. Luis O Gomez summarizes his findings by mentioning One could conceive of the Borobudur simultaneously be a stupa (the nirvanized emptiness of the absolute, the cosmic samadhi of Vairochana), a cosmic mountain (the mundane sphere contained in the absolute) and perhaps a type of Mandala (as a map the correlation of the unmanifest absolute and man's ascent to it with the mundane sphere and Bodhisatva's descent from the absolute) to reveal its presence in the world. The situation of Borobudur so close to the ecliptic would be viewed with equal clarity. I further assume that the puranic name of Java island was Nandishwar dveepa.

कई तीर्थंकरों के जन्म कल्याणक और निर्वाण कल्याणक क्षेत्र यहाँ पर होने के कारण प्राचीन काल में दक्षिण भारत एवं गुजरात आदि स्थानों से वहाँ के राजा तथा दर्शनार्थी यहाँ पर आते थे। लेकिन

सातवीं शताब्दी से शेवों के प्रबल प्रभाव और विरोध के कारण उन जैन राजाओं को जैन मंदिरों के अन्दर शैव मूर्तियाँ भी स्थापित करनी पड़ी। ज्ञातव्य है कि पल्लव राजा महेन्द्र वर्मन पहले जैन धर्मी थे परन्तु बाद शैवधर्मी बन गए। और उन्होंने अनेक जैन मंदिरों में शैव मूर्तियाँ स्थापित की। इस प्रकार हम देखते है कि सातवीं शताब्दी में शैव धर्म के प्रभाव के कारण अंगकोर के मंदिरों में भी हिन्दू देवताओं को प्रतिष्ठित किया गया। लेकिन बारहवीं शताब्दी में थाई और चाम लोगों ने इन मंदिरों को पूर्णतया नष्ट कर दिया। शिवलिंगों को तोड़ दिया और मूर्तियों को खण्डित कर दिया। वहाँ के लोगों और इतिहासकारों के अनुसार वहाँ बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं थी। क्योंकि अगर बुद्ध की मूर्ति होती तो थाइ और चाम लोग जो स्वयं बौद्ध धर्मी थे बौद्ध की मूर्तियों को नष्ट नहीं करते।

Khemer Statue

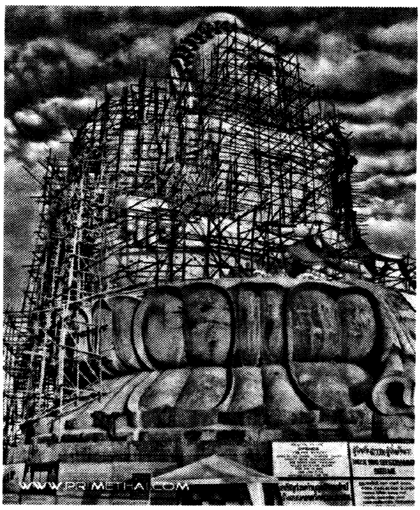

Great Buddha Phuket

आज भी वहाँ हजारों जैन मूर्तियाँ खण्डित अवस्था में पायी गई है। भाग्यवश कुछ मूर्तियां अच्छी अवस्था में भी मिली है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि

वहाँ पर जो मूर्तियाँ है जिनपर सर्पछत्र है वे सभी तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की है।

बोरोबदूर मंदिर में नन्दीश्वरद्वीप की तरह 72 जिनालय है जबकि अंकोरथोम में 52 जिनालय है।

कंबोदिया की सीमा पर पूर्व में लाओस और थाइलैण्ड है। दक्षिण पूर्व में वियतनाम और पश्चिम में Gulf of Thailand वहाँ की अधिकांश जनसंख्या खामेर जाति की है। कंबोदिया को संस्कृत में कम्बूजा कहते हैं। जो कभी बहुत बड़ा साम्राज्य रहा था। अंकोरवाट का मंदिर खामेर लोगों की उच्च दक्षता का नमूना है। तथा यह विश्व के सात आश्चर्यों में एक माना गया है। Candi

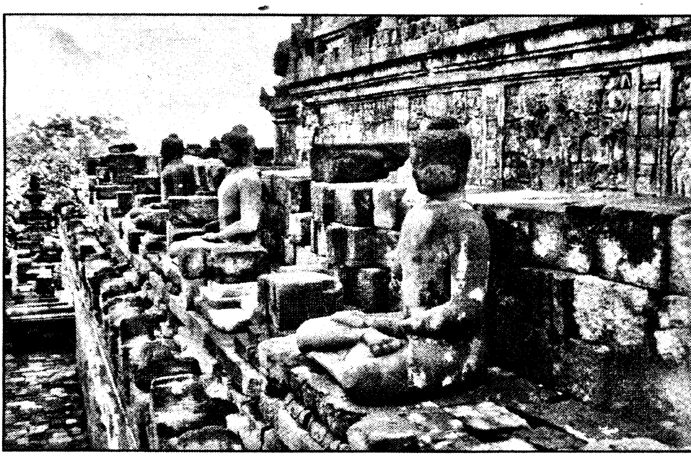

Plaoson के शिलालेखों से पता चलता है कि यहाँ पर जिन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी है।

प्राचीन काल में बर्मा ब्रह्मदेश कहलाता था। यहाँ दो प्रमुख नदिया चिन्डविन और ईरावती है। यहाँ के प्रसिद्ध जगह श्रीक्षेत्र, कुलस्थान, रमन्नादेश, ज्योतिनगर, ब्रह्मवती, चंपापुरा और वैशाली

आदि है। अमरपुरा, इन्वा, सागेन और मोनिवा यहाँ के प्राचीन नगर थे। ईरावती नदी के पूर्वी किनारे पर श्रीक्षेत्र सबसे प्रमुख धार्मिक स्थान है जहाँ हजारों स्तूप और मंदिर प्रत्येक दिशा में निर्मित किए गए थे। यहाँ बौद्ध मंदिरों का निर्माण राजा अन्नवर ने किया था (अनिरुद्ध) इसके पहले के जो मंदिर एवं मूर्तियाँ पायी जाती है वे निश्चित रूप में तीर्थंकरों के है। बागान म्यूजियम से पाये जाने वाली कुछ तीर्थंकर मूर्तियों का चित्र दे रहे हैं।

Second Century तक इस क्षेत्र में जैन मुनि विचरण करते थे क्योंकि यह क्षेत्र आठ तीर्थंकरों से संबंधित थे इसका प्रमाण कालकाचार्य का सुवर्णभूमि होते हुए चीन जाने का वर्णन जैन साहित्य में मिलता है। इस बात को डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार ने भी स्वीकार करते हुए लिखा है कि– "An Annamite text gives some particulars of an Indian named Khauda-la. He was born in a Brahmana family of Western India and was well-versed in magical art. He went to Tonkin by sea, probably about the same time as Jivaka. . . He lived in caves

or under trees, and was also known as Ca-la-cha-la (Kalacharya-black preceptor?)"

About Suvarn Bhumi R.C. Majumdar states that now we have definite evidence that a portion of Burma was known in later ages as Suvarnabhumi. According to Kalyani Inscription (Suvarnabhumi-ratta-samkhata Ramannadesa) Ramannadesa was called Suvarnabhumi

which would then comprise the maritime region between Cape Negrais and the mouth of the Salvin . . . There can also be hardly any doubt, in view of the statement of Arab and Chinese writers, and the inscription found in Sumatra itself, that the island was also known as Suvarnabhumi and Suvarnadvipa . . . There are thus definite evidences that Burma, Malaya Peninsula and Sumatra had a common designation of Suvarnabhumi, and the name

Suvarnadvipa was certainly applied to Sumatra and other islands of the Malaya Archipelago."

नाए धम्म कहाओ में चम्पानगर का विवरण आता है जहाँ भारतीय व्यापारी समुद्र से व्यापार के लिए जाते थे। ये चम्पा भागलपुर की नहीं थी बल्कि वियतनाम की चम्पा जो Mekong नदी के किनारे समुद्र के पास स्थित है। Second Century B.C. तक वियतनाम चम्पा कहलाता था। तक तक वहाँ बौद्धो या हिन्दुओं की कोई बस्ती नहीं थी। अतः तब तक यहाँ की संस्कृति पर जैन संस्कृति का ही प्रभाव था। इतिहासकार डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार का भी मानना है कि It is wrong to suggest that Champa was a Hindu Kingdom in the 2nd century A.D. (Cultural and Colonial Expansion).

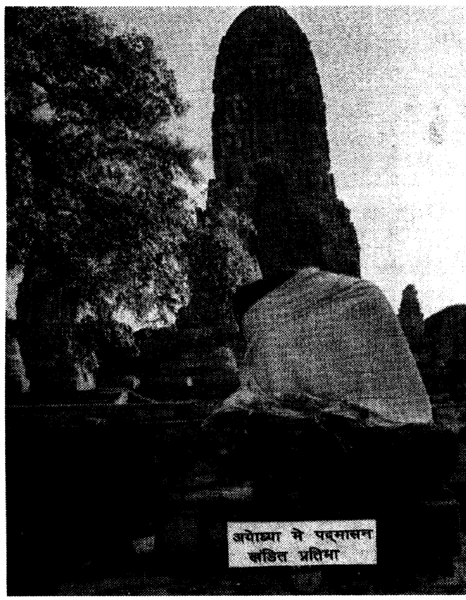
अयोध्या मे पद्मासन खंडित प्रतिमा

थाइलैण्ड के मंदिरों की शैली बंगाल और उड़ीसा के मंदिरों से मिलती है। जो कि सराकों द्वारा निर्मित है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यहाँ से सराक शिल्पकार तथा मूर्तियां उन देशों को ताम्रलिप्त और पिहुड बन्दरगाहों से भेजी जाती थी। 500 ई. पू. उड़ीसा से बड़ी संख्या में इनलोगों का उन क्षेत्रों में जाने का वर्णन मिलता है।

अमेरिका के Grand Canyan में भी प्राचीन श्रमण अवशेष मिले है जो Egypt के प्राचीन संस्कृति के अनुरूप है। अतः यह कहा जाता है कि प्राचीन Egypt के लोगों ने वहाँ जाकर अपनी बस्तियाँ स्थापित की थी। Egypt की प्राचीन संस्कृति श्रमण संस्कृति थी तथा श्रमण महापुरुषों को वहाँ पूजा जाता था। वहाँ के पहाड़ों के नाम हमें Grand Canyan की पहाड़ों पर मिलते हैं। वहाँ से हमें प्राचीन ऋषभ की भी मूर्ति मिली है। जिसके विषय में

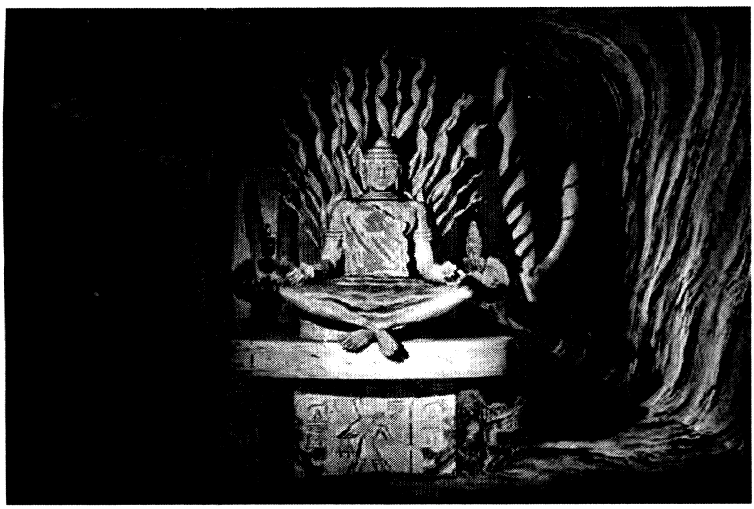

Tirthankar, Grand Canyan

विद्वानों का कहना है कि ये बौद्ध मूर्ति की तरह है। जैन संस्कृति से अनभिज्ञ पश्चिमी पुरातत्त्ववेत्ता इस असमंजस में है कि ये मूर्ति किस धर्म के लोगों की है। यह देखने में बौद्ध मूर्ति की तरह लगती है लेकिन बौद्ध काल के पहले की होने के कारण उन लोगों के मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई।

over a hundred feet from the entrance in a cross hall, several feet long, in which was found the idol or

image of the peoples God sitting cross legged with a lotus or lily in each hand. The cast of the face is oriental,

Tirthankar, Grand Canyan

and a carving shows a skillful hand. The idol most resemble buddha though the scientists are not certain as to what religion worship it represents ....it is possible that the worship most resemble the ancient people of tibet में चार्ल्स बरटिलस ने अपनी किताब 'Mysteries from forgotton world' में उत्तरी अमेरिका की खोज यात्रा के विषय में लिखा है जिसमें चीनी यात्रियों के मैक्सिकों जाने का वर्णन है। तथा उन्होंने अपने लेखों में वहाँ की चित्रकला में कमल और स्वस्तिक आदि प्रतीकों का वर्णन किया है। मैक्सिकों से प्राप्त कायोत्सर्ग दिगम्बर मूर्ति, स्तूप तथा माया और एजटेक सभ्यता के अवशेषों में जो मूर्तियाँ तथा प्रतीक चिन्ह मिले है उसकी सादृश्यता आश्चर्य जनक रूप से जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों तथा उनके प्रतीकों

से है। इस सन्दर्भ में विशेष खोज की जानी चाहिए।

अन्तिम दस तीर्थंकर भारत में हुए है जिसमें नेपाल से श्रीलंका तथा अफगानिस्तान से बिहार तक का क्षेत्र हम मान सकते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन 17 में कुछ चक्रवर्ती राजाओं और तीर्थंकरों का वर्णन है जो भरत क्षेत्र में हुए थे। इनमें शांतिनाथ भगवान, कुन्थुनाथ, अरिनाथ और नमिनाथ का स्पष्ट वर्णन हमें मिलता है। नेपाल में हमें नमी और मलि नामक गाँव आज भी दृष्टिगोचर होते है। एक नेपाली विद्वान ऋषिकेश साहा के अनुसार A sage Muni named Ne became the Protector of their land and the founder of its first ruling dynasty नेपाल का अर्थ है Ne द्वारा संरक्षित भूमि। ये Ne नमि का ही प्रतिरूप है। मुनि सुव्रत स्वामी का कैलास में जाने का वर्णन हमें मिलता है।

Olmec figures recalling the dedication of the kayotsarg. La Venta, Veracruz, Mexico. (3)

चौदहवीं शताब्दी में श्रीजिनप्रभुसूरि ने विविध तीर्थकल्प में श्री शान्तिनाथ भगवान के महातीर्थ का उल्लेख करके उसे श्रीलंका में होना बताया है।

श्रीलंका में जैन धर्म बहुत प्राचीन काल से है। वहाँ की सबसे लम्बी नदी महावेली गंगा जिस पहाड़ी से निकलती है उसे Adams peak कहते हैं। इसी के शिखर पर श्रीपद् मंदिर है, इसके दक्षिण और पूर्व में रत्न पत्थर प्राप्त होते हैं जिनमें Emarald, Rubies and Sapphires प्रमुख है, इसलिए इस क्षेत्र को रत्नद्वीप भी कहते हैं। यहाँ पर सिंहलीजाति के लोग रहते हैं। सिंहल नाम से इस पहाड़ी का नाम Saman Takuta (peak of saman) पड़ा। इसकी चोटी पर चढ़ने को स्वर्गारोहण कहा जाता है। इसलिए इसे Mount Rohan भी कहते हैं। कहते हैं यहाँ जो पद-चिन्ह है God Saman के है। ब्राह्मण इसे शिव के चरण कहते हैं। चरणों के पास में जो मंदिर है वह Saman Temple है। यह पहाड़ी देखने में बिलकुल पिरामिड की तरह लगता है। प्राचीन काल में अरबवासी इस क्षेत्र को Saran Dib कहते थे। जिनप्रभसूरि जी ने श्रीलंका में सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ के महातीर्थ होने

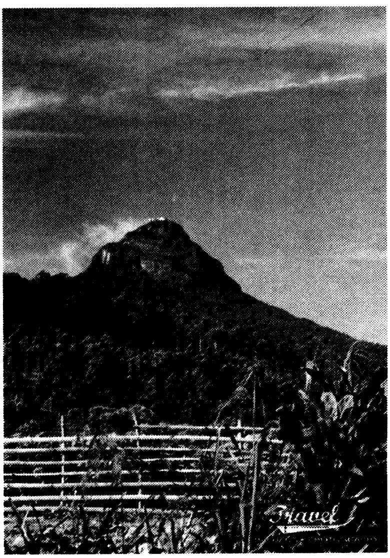

का उल्लेख किया है। यही वो महातीर्थ है श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर का जहाँ से उन्होंने स्वर्गारोहण (मोक्ष) किया।

दक्षिण भारत में केरल और तमिलनाडू में नयनार शब्द जैनियों के लिए प्रयुक्त किया जाता था तथा वहाँ के जैन मंदिर परवर्तीकाल में शैव और वैष्णव मंदिरों के रूप में परिवर्तित कर दिए गए।

The history has it that since the temple came into existence for centuries it was known as only Nayanar temple. Nayanar means Jina. From ancient times, Jain Munis and Tirthankaras were addressed and Nayanar by the Jains. Illangovadigal, in Silapathikaram, begins the chapter Madurai Kandam with prayers to Arhat. In his commentary on the prayers, Adiyarkku Nallar says that Arhat temple stands for Nayanar temple. Even today it may be seen in Kalugumalai (Eagle Mountain), Particulars of Jain Munis are written on stone indicating that they were Nayanars. Stone inscriptions found in Thiruvadikai speak of Jain temple as Nayanar temple."

Tiruchcharanathumalai means 'The hill that is holy to the Charanars'. The serpent shrine of Nagercoil, which is supposed to be a Hindu temple, was originally a Jain one. On the pillars of this temple, are the images of Jain Tirthankaras, and the one standing under hood of a five-headed serpent, is that of Tirthankara Parsvanath. Thus this ancient city has acquired its namt Nagercoil, from

the five headed serpent shrine of Nagaraja, which is situated in the heart of the present town. (J.J.)

वैदिक साहित्य में कुर्म पुराण का मुनि सुव्रत स्वामी के प्रतीक कुर्म से साम्य मिलता है। ऋग्वेद (23, 27, 32) में कुर्म ऋषि के उपदेश संकलित है जिनकों हम तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी के रूप में पहचान सकते हैं। कुर्म पुराण (40, 27, 41) में लिखा है कि विष्णु ने कुर्म अवतार के रूप में ऋषभ के वंश में जन्म लिया था तथा उन्होंने पंच महाव्रतों के पालन का उपदेश दिया था। पंच महाव्रत जैन दर्शन के मुख्य व्रत है। कुर्म पुराण में हिंसक बलि का विरोध, शाकाहार एवं दिन में भोजन करने का जो वर्णन मिलता है उससे यही प्रमाणित होता है कि मुनि सुव्रत स्वामी को वैदिक साहित्य में कुर्म अवतार के रूप में शामिल किया गया है।

यजुर्वेद (1-25) में जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के सन्दर्भ में वर्णन मिलता है। प्रभास पुराण में लिखा है कि उन्होंने रैवतगिरि **गिरनार** में निर्वाण प्राप्त किया था। महाभारत (अ 129 श्लोक 50-52) में भी अरिष्टनेमि के विषय में उल्लेख मिलता है। **डॉ. राधाकृष्णन** ने (Indian Phylosophy Vol. Pg. 287) में लिखा है कि यजुर्वेद में तीन तीर्थंकरों का वर्णन है ऋषभ, अजीत और अरिष्टनेमि। Dr. G. Roth ने अपनी पुस्तक "Historicity of the Tirthankaras" में इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है। There are some motifs on the Mohanjodaro seals, are identical with those found in the ancient Jain art of Mathura."

दक्षिण में हुए दस तीर्थंकरों में से तीन तीर्थंकरों का भारत में वर्णन हमें उत्तराध्ययन सत्र से मिलता हैं। जिसके अनसार—

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महड्ढिओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं।।38।।

महा ऋद्धिमान लोक में शान्ति के करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया।।38।।

सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान यद्यपि भारत में हुए थे लेकिन उनका निर्वाण इस श्लोक के अनुसार भारत के बाहर हुआ है।

इक्खागरायवसभो, कुंथू नाम नरीसरो।
विक्खायकित्ती भगवं, पत्तो गइमणुत्तरं।।39।।

इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में श्रेष्ठ और विख्यात कीर्ति वाले भगवान कुंथुनाथ नरेश्वर ने मोक्ष गति प्राप्त की।।40।।

सागरंतं चइत्ताणं, भरहं नरवरीसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं।।

समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष को त्यागकर अर नामक नरेन्द्र ने कर्मरज को उड़ाकर मोक्ष प्राप्त की।।40।।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का प्रथम चरण 9,000 साल पूर्व का माना गया है तथा यहाँ पर खेती का प्रारम्भ भी 9,000 साल से 11000 साल के बीच हुआ ऐसा विद्वानों का मानना है कि हड़प्पा से प्राप्त मूर्ति के विषय में डॉ. टी.एन. रामचन्द्रन ने स्पष्ट लिखा है कि We are perhaps recognising in Harrappa statue a full fledged Jain Tirthankara in the characteristic pose of physical abandon (kayotsarga). The statue under description is therefore a splendid representative

Statuette, Harappa

specimen of this thought of Jainism at perhaps its very inception. ये सभ्यता गुजरात से लेकर सम्पूर्ण अफगानिस्तान से ऊपर स्वातघाटी, वैस्टर्न तिब्बत, काश्मीर, खोतान, कजाकिस्तान, चाइना, मंगोलिया, साइबेरिया तक पनपी और ये सभी क्षेत्र Samanism से प्रभावित थे। डॉ. एम. एल. शर्मा, रायबहादुर रमाप्रसाद चन्द, प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी आदि अनेक इतिहासकारों ने सिन्धु घाटी सभ्यता को ऋषभ संस्कृति से प्रभावित माना है।

Dr. Zimmer के अनुसार "Jainism represent the thinking of the non Aryan people of India and believed that there is truth in the Jaina idea that their religion goes back to a remote antiquity in question being that of the Pre Aryans' so called Dravidian period which has recently been dramatically illuminated by the discovery of a series of great late stone age cities in the Indus valley dating from the third and perhaps even to the forth millennium B.C."

आज तक की खोजों के अनुसार यहाँ की सभ्यता दक्षिण-पूर्वी एशिया से ज्यादा प्राचीन मानी जाती है। South East एशिया में अभी तक पाँच हजार साल पूर्व और कुछ स्थानों पर आठ हजार सालों तक का समय विद्वानों ने निर्धारित किया है।

Shri T. N. Ramcharandran Joint Director-General Archaeological Department, Government of India while leading an expedition of Afghanistan says.

"I had occasions to verify the records of Yuan Chwang (Hien Tsan-600-654A.A.), who said, 'There are many Tirthankaras heretics** here, who worship the Ksuna Deva. Those who invoke him with faith obtain their wishes............. The Tirthankaras by subduing their minds and mortifying the flesh get from the spirits of heaven sacred formulae with which they control desires and recover the sick.'

तिब्बत से प्राप्त प्राचीन चित्र दिगम्बर मुनियों के हैं परन्तु जिन्हें भ्रमवश बौद्धों का मान लिया गया है। जबकि बौद्धों में नग्न मूर्तियाँ नहीं होती। "The four monasteries... their special marks...these paintings represent Buddhist saints often nude and in a standing position." (History of Western Tibet-A. H. Francka).

पं. रांहुल सांकृत्यायन ने अपनी तिब्बत यात्रा के दौरान अनेक जैन मूर्तियों को एक बंद कमरे में पड़ा हुआ देखा था। उन मूर्तियों के लेखों का विवरण भी उन्होंने अपनी किताब मेरी तिब्बत यात्रा में दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि जैन धर्म के तीर्थंकरों का अस्तित्त्व सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि चारों दिशाओं में चार, आठ, दस और दो के क्रम में मिलता है। लेकिन दुर्भाग्यवश श्रमण

संस्कृति का वास्तविक स्वरूप जैन धर्म के रूप में आज सिर्फ भारतवर्ष में ही सीमित रह गया है। अन्तिम दस तीर्थंकर इसी भूमि में हुए थे, उनके प्रभाव के कारण ही पुष्यमित्र और शंकराचार्य जैसे प्रबल शैव उपासकों द्वारा प्रताड़ित करने के बावजूद जैनधर्म का अस्तित्त्व आज भी यहाँ पर बरकरार है। जैन धर्म की प्रागैतिहासिकता, अति प्राचीनता और अनादिता के प्रवहमान धारा से प्राप्त साक्ष्यों से चौबीस तीर्थंकरों के अस्तित्व में सहज ही आस्था और विश्वास स्थिर होता है। हमें अपनी इस विश्व विख्यात एवं मान्य तीर्थंकर परम्परा पर गौरव होना चाहिए। क्योंकि विश्व के समस्त धर्म और मानवीय आत्मविकास एवं समाज का विकास की प्रतिष्ठा का मूल आधार यही तीर्थंकर परम्परा है।

नोट : अष्टापद की खोज अभी भी चल रही हैं और आशा करते है कि शीघ्र ही अष्टापद के अस्तित्व को प्रामाणिक करने में हमें सफलता मिलेगी।

The so-called 'Young-Huaste-can' from San Luis Potosi, Mexico, appears as a saint in divine communion. (5)

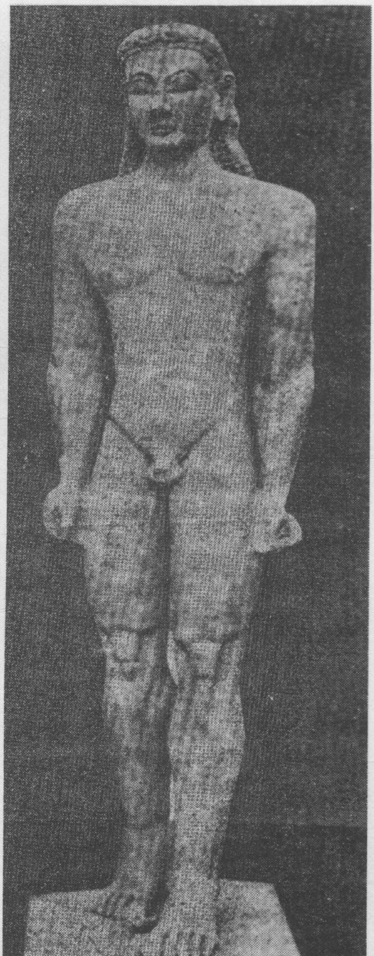

Apollo (600 B.C). Greece (6)

Norse God Odin

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Vol XXXVII No.01
25th April 2013
TITTHAYARA
Postal Reg. No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77